वाल्यूम-1
पुण्य स्मृति, वि. संवत् 2073, 01 फरवरी 2017
अंक - 1

अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता

अर्द्ध वार्षिक

श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम
वेदान्त नगर, सीपरी बाजार, झाँसी (उ.प्र.)

अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता

Vol -1 | पुण्य स्मृति 2073 | 01 फरवरी 2017 | अंक-1

श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम लहर देवी रोड, नाल गंज, सीपरी बाजार, झांसी के प्रबंधक स्वामी श्री शुकदेवानन्द द्वारा प्रकाशित एवं सम्पादित तथा वीर बुन्देलखण्ड प्रेस, 178, गुंसाईपुरा, झांसी द्वारा मुद्रित किया गया ।

- सम्पादक, स्वामी शुकदेवानन्द

संस्थापक एवं संरक्षक
स्वामी हीरानन्द जी महाराज एवं
श्री आर. के. मिश्रा
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम धर्मार्थ समिति
लहरगिर्द नालगंज
सीपरी बाजार, झांसी (उ.प्र.)

प्रधान सम्पादक :
स्वामी शुकदेवानन्द जी
प्रबन्धक
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम धर्मार्थ समिति

सम्पादक मण्डलः
श्री प्रमोद कुमार गुप्ता
श्रीमती कुमकुम बिसरिया
डॉ. रंजना शर्मा
प्रकाशन कार्यालय :
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम
धर्मार्थ समिति लहर गिर्द, नालगंज
सीपरी बाजार, झांसी (उ.प्र.)
पिन कोड – **284003**
फोन : **(0510) 2360251**

अर्द्धवार्षिक
मूल्य : निःशुल्क वितरण के लिये

मुद्रक : **वीर बुन्देलखण्ड प्रेस**
गुसांईपुरा, झाँसी (उ.प्र.) फोन : **0510–2332931**

अनुक्रमणिका

क्रम.	विवरण	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	स्वामी शुकदेवानन्द	3
2.	राम ब्रह्म स्वरूप	स्वामी हीरानन्द	4
3.	निज स्वरूप	आर. के. मिश्रा	6
4.	परम पूज्यनीय 108 श्री स्वामी शुकदेवानन्दजी का योग शिविर में ''उनविशत् पुष्प''	प्रमोद कुमार गुप्ता	8
5.	ऊँ गुरू परमात्मने नमः	श्रीमती रूकमणी शर्मा	10
6.	जनकसुता जगजननी जानकी	पं. चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी	11
7.	गुणातीत	प्रमोद कुमार गुप्ता	14
8.	गुरू आस्था	श्रीमती कृष्णा श्रीवास्तव	15
9.	संवेदना	श्रीमती कुमकुम बिसारिया	16
10.	वेदान्त एक अलौकिक दर्शन	आचार्य प्रकाश चन्द्र पुरोहित	17
11.	चिन्तन	इं. जे. पी. गंगेले ''लंकेश''	18
12.	मौन की साधना	डॉ. रंजना शर्मा	19
13.	गजल	श्रीमती कुमकुम बिसारिया	20
14.	अविद्या की ग्रंथि	स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती	21
15.	दशमुख दशरथ	ओ. के. स्वामी	22
16.	गुरूदेव का आशीर्वाद	ब्रह्मलीन स्वामी विश्वम्भरानन्द आशीर्वाद	24
17.	शिवोऽहम्	श्रीमती कुमकुम बिसारिया	25
18.	विकृत चिन्तन	श्री राम शर्मा आचार्य	26
19.	अनमोल वचन	कु. शुभा नीखरा	27
20.	आत्मस्वरूप का बोध	पं. वेद प्रकाश त्रिवेदी	28
21.	गुरू से प्रार्थना	श्रीमती कृष्णा श्रीवास्तव	30
22.	सुनी अधूरी सीख	ठा. लाखन सिंह तोमर	31

सम्पादकीय...............

हिन्दू संस्कृति में मूर्ति पूजा का विशेष महत्व है। सभी लोग किसी न किसी रूप में मूर्ति पूजन करते हैं चाहे विष्णु के उपासक हों, चाहे शैव आदि देवी देवता के उपासक हों। यदि हम मूर्ति पूजा के रहस्य पर विचार करें तो भारतीय मनीषियों की गहरी सोच का पता चलता है।

शास्त्र का प्रमाण है कि नर्मदा नदी का प्रत्येक पत्थर शंकर और नेपाल की गंडकी नदी का प्रत्येक पत्थर शालिगराम है जिसकी पूजा विष्णु के रूप में होती है। सिद्धांत यह है कि सृष्टि के कण-कण में ईश्वर का वास है।

''ईशा वास्यमिदं सर्वं पयत्किञ्च जगत्यां जगत्। ई.वा.उ.''

जब ईश्वर सब में व्यापक है तो फिर उस की पूजा किसी भी रूप में कर सकते हैं। चाहे वह मिट्टी हो, पत्थर हो या फिर कोई धातु हो कोई फर्क नहीं पड़ता। सर्वसाधारण की श्रृद्धा को जोड़ने के लिए नर्मदा नदी के पाषण में शंकर का अध्यारोप कर लिया गया और जब हम पूजा करते हैं तब जो मंत्र बोला जाता है उसका भाव सर्वव्यापी चेतन की ही स्तुति होती है।

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्नाभं सुरेशं।
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णु भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्।।

शादी व्याह में गाय के गोबर से गणेश जी बनाकर उनकी पूजा करते हैं तथा सुपारी में भी गौरी गणेश इत्यादी का पूजन होता है। इसी प्रकार कलश पूजन आदि की जो पद्धति है उन सबमें भिन्न-भिन्न वस्तुओं में अध्यारोप के उदाहरण हैं किन्तु सभी पूजन में भाव सर्वव्यापी परमात्मा का ही होता है। मन की एकाग्रता के लिए भिन्न-भिन्न देवी देवताओं का पूजन भाँति-भाँति विधि से किया जाता है।

मनु बुद्धि को स्वस्थ रखने के लिए गणेश सरस्वती की वन्दना, शक्ति के लिए देवी माँ की वन्दना एवं धन के लिए लक्ष्मी कुबेर की वन्दना की जाती है। मनुष्य के जीवन में यह अलग-अलग अवसरों पर परिस्थितियों एवं आवश्यकता अनुसार सम्पन्न की जाती है। उदाहरण स्वरूप ज्ञान के लिए वन्दना विद्या गुरू के रूप में की जाती है। इसी प्रकार से माता-पिता में भगवान के दर्शन सभी करते हैं। इन अध्यारोपों के द्वारा हम किसी भी रूप में पूजा करें, वास्तव में पूजा एक ही तत्त्व की कर रहे होते हैं। वही तत्त्व सर्वत्र आत्मा के रूप में व्यापक है। भक्ति के द्वारा हम उसका पूजन, अर्चन, ध्यान आदि किसी भी रूप में कर सकते हैं।

ज्ञानी पुरूष उसका अनुभव अपने अन्दर ही करते हैं। ज्ञान के लिए श्रृद्धा एवं विवेक की परम आवश्यकता होती है जो हमें गुरू कृपा से सत्संग द्वारा प्राप्त हो पाती है।

❖ स्वामी श्री शुकदेवानन्द जी महाराज

राम ब्रह्म स्वरूप

श्लोक – ऊँ यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानु पश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजगुप्सते।।

अर्थ – जो सब भूतों में एक ही आत्मा को देखता है तथा आत्मा में ही सब भूतों को देखता है वही यथार्थ देखता है।

यह अध्यात्म रामायण का प्रसंग है जब श्री राम चन्द्र जी रावण आदि राक्षसों को मार के लंका पर विजय प्राप्त करके अयोध्या में आये और राज्याभिषेक हो गया सभी बानर सेना को भेंट देकर विदा कर दिया, हनुमान जी रामजी के चरणों में बैठे रहे तब राम भगवान ने हनुमान जी से प्रसन्न होकर कहा जो तुम्हारी इच्छा हो सो मांगलो आज ब्रह्म लोक तक पद व आणिमादि आठों सिद्धि व नौ निद्धि व ब्रह्म लोक तक के भोग मांग लो, वही तुम को दूंगा।

चौ0 – सुन कपि तोहि समान उपकारी, नहिं कोई सुर–नर मुनि तनु धारी।।
प्रति उपकारा करों का तोरा, सन्मुख है न सकत मन मोरा।।

इतना कहने पर भी हनुमान जी मौन रहे कोई पद व सिद्धि स्वीकार नहीं की। तब रामजी ने विचार किया कि हनुमान जी ज्ञान के अधिकारी हैं।

तब राम जी ने सीता जी से कहा हनुमान जी को तत्व ज्ञान का उपदेश करो अब यहाँ शंका होती है राम भगवान ने तत्व का उपदेश स्वयं क्यों नहीं सुनाया इसलिए कि सीता माया है और माया स्वयं अपने अस्तित्व का खण्डन करेगी तो शीघ्र ज्ञान हो जाएगा तब सीता जी ने हनुमान जी से कहा।

श्लोक– रामंविद्धि परब्रह्म सच्चिदानन्दमद्द्वयम
सर्वोपाधि विनिमुक्तम् सत्तामात्रमगोचरम्।।

अर्थ– हे हनुमान जी तुम राम को पर ब्रह्म सच्चिदानन्द अद्वितीय सर्वोपाधि से रहित सत्ता मात्र ही जानो।

श्लोक– आनन्दम् निर्मलम् शान्तम् निर्विकारम् निरंजनम्।
नित्यबोधम् चिदानन्दम् रामम् ब्रह्म नमाम्यहम्।।

अर्थ – राम भगवान आनन्द स्वरूप है यानि सुख–दुख से रहित है निर्मलम् अर्थात् मल विक्षेप आवरण से रहित है। शान्तम् यानी पंचभूत अनेक अवस्था और ज्ञान स्वरूप राम अनेक में एक है और निर्विकारम् यानि सब विकारों से रहित है चैतन्य धन आनन्द स्वरूप है।

चौ0– राम ब्रह्म व्यापक जग जाना, परमानन्द परेश पुराना।
राम सच्चिदानन्द दिनेशा, नहिं तह मोह निशा लवलेशा।।

अर्थ– राम ब्रह्म है व्यापक है परमानन्द स्वरूप है सच्चिदानन्द स्वरूप है।

जैसे एक ही लाईट पंखा, कूलर, टयूब, बल्व में अनेक उपाधि धारण करके अनेक रूप होकर भासती है। जैसे एक जल नीम में कडुआ, नीबू खट्टा, मिर्च में तीक्षण, केला, पपीता में मीठा भासता है, उसी प्रकार एक ही राम अनेक उपाधि धारण करके अनेक रूप में भासते हैं। वहीं हमारे तुम्हारे

भीतर आत्म रूप से व्यापक है हमारी आत्मा हैं।

ब्रह्मादि देवता जिसके बस में हैं वह सीता में हूँ हे हनुमान जी मैं राम की सत्ता पाकर सब कुछ करती हूँ स्वतंत्र कुछ नहीं करती यह जो अयोध्याजी में राम जन्म से लेकर अब राज्याभिषेक तक मैंने ही सब किया लेकिन अज्ञानी लोग राम में आरोप करते है। राम तो निर्विकार हैं सत्ता मात्र है। इस प्रकार सीता जी से उपदेश सुनकर हनुमान जी जब आये, राम का दरबार लगा हुआ था। सब समाज एकत्रित था हनुमान जी ने राम के चरणों में प्रणाम किया तब श्री राम जी ने पूंछा तुम्हारा स्वरूप क्या हैं।

दोहा— एक बार दरबार में बोले राघव भूप, कहो प्रिय हनुमान जी कौन तुम्हारा स्वरूप।।

दोहा— प्रश्न सुनत रघुनाथ के, भाव लखों हनुमान उत्तर दीन्हों प्रेम से धर हिय गुरू पद ध्यान।।

दोहा— देह द्रष्टि तुम दास हूँ जीव दृष्टि तुम अंश।
वास्तव में मैं ही एक हूँ। सुनो सूर्य अवतंश।।

श्लोक— देह दृष्टवा तु दासोऽहम् जीव दृष्ट्वात्वदंशका।
वस्तु तस्तु तदेषहमिति मे निश्चितामतिः।।

अर्थ— राम भगवान के वचन सुनकर श्री हनुमान जी ने विचार किया कि इस सभा में कर्मकाण्डी व उपासक ज्ञानी महापुरूष विराजमान हैं अतः ऐसा उत्तर देना चाहिए कि सबको प्रिय हो तब हनुमान जी ने कहा कि मेरे को शरीर देख रहे हैं, उनकी दृष्टि में हम आपके सेवक हैं यह कर्मकाण्ड वालों के लिए कहा क्योंकि कर्म शरीर द्वारा ही होता है। जो मेरे को जीव मानते हैं उनकी दृष्टि में हम आपके अंश है ''ईश्वर अंश जीव अविनाशी'' क्योंकि उपासना मन के द्वारा ही होती है। यह उपासना वालों के लिए कहा है और वास्तव में यदि पूँछते हो तो जो आपका स्वरूप है वही मेरा स्वरूप है हमारे आपके स्वरूप में एक रत्ती मात्र भी भेद नहीं है यह ज्ञानी महापुरूषों के लिये कहा है।

सदगुरू पद रजेच्छु

— स्वामी हीरानन्द
संरक्षक संचालक
अखण्ड विश्वम्भरानन्द सन्त आश्रम, झांसी

शील आचरण के बिना, निष्फल ऊँचा ज्ञान।
शील बिना राक्षस बना, रावण सा विद्वान।।
मात—पिता गुरूजनों का, जहाँ नहीं सम्मान।
वहीं यज्ञ पूजा रचा, निष्फल सारे दान।।

संकलनकर्ता — पंकज मिश्रा

''निज – स्वरूप''

गुरूदेव कहा करते थे कि आप का निज स्वरूप सच्चिदानन्द स्वरूप है। सच्चिदानन्द तीन शब्दों की सन्धि से बनता है। सत् + चित्+ आनन्द। सत् को बताने के लिये असत् को समझना आवश्यक है। जिस प्रकार प्रकाश का अस्तित्व अंधकार के बगैर गौण है उसी तरह असत् को समझे बगैर सत् का विवेचन नहीं हो सकता। असत् देश भेद, काल भेद और अवस्था भेद से ग्रस्त है। हर वह चीज जो समय, स्थान या अवस्था के अनुसार परिवर्तित होती है वह असत् है। जो सर्वव्यापक, सभी कालों में और सभी अवस्थाओं में एकनिष्ठ रहता है। अपरिवर्तनीय रहता है वह ही सत् है। इसी प्रकार सामान्य चेतन असंग रूप में विद्यमान रहते हुए सभी में भाषित रहता है। उसी प्रकार आपका निज स्वरूप आनन्दमय है। मनुष्य हमेशा आनन्द की ही खोज में लगा रहता है। हम हर वह कार्य करते हैं जिससे हमें आनन्द प्राप्त होता है। यह अलग बात है कि इन्द्रियों के अधीनता के वशीभूत हम हर उस विषय की प्रप्ति को आनन्द मान बैठते हैं जिससे हमारी इन्द्रियों की तुष्टि होती है।

जब हम प्रत्येक विषय, वस्तु, एक पदार्थ की विवेचना उपरोक्त के अनुसार करते है तो इस संसार के प्रत्येक पदार्थ, वस्तु एवं प्राणी को असत् स्वरूप में ही पाते है। ऐसा कोई भी देहधारी प्राणी, अथवा पदार्थ नहीं है जो कि सर्वव्यापक, सभी कालों में और सभी अवस्थाओं मे एक समान एकनिष्ठ विद्यमान हो। अतः यह सभी असत् हैं और असत् होने के कारण सच्चिदानन्द अर्थात हमारा निज स्वरूप नहीं हो सकते। केवल आत्मा ही एक ऐसा विकल्प है जो इन सभी भेदों से परे है और वह ही सभी दृष्टिकोंण से सत् की परिभाषा को पूर्ण करता है। आत्मा का बहुत ही सुन्दर विवेचन गीता में और आदि शंकराचार्य ने अपने भाष्य में किया है।

इसी बात को समझने का प्रयास विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार किया जा सकता है विज्ञान के अनुसार पूरी सृष्टि कि संरचना 13.6 अरब वर्ष पूर्व एक बड़े धमाके के उपरान्त ऊर्जा का द्रव्य में परिवर्तन होने से हुई। वैज्ञानिकों के अनुसार विभिन्न पदार्थ अणुओं, परमाणुओं और मोलीक्यूल के आपस में संकलित होने से बने हैं। इस सषष्टि का सूक्ष्मतम परमाणु (एटम) हाइड्रोजन गैस का है। इसका एक परमाणु (एटम) एक न्यूक्लियस एवं उसके चारों ओर लगभग प्रकाश की गति से घूमते हुए इलैक्टोन के संयोजन से हुआ है।

एक हाईड्रोजन के एटम का आकार 10^{-10} मीटर के लगभग है। इसको विज्ञान की भाषा में 1आमिस्ट्रोंग युनिट कहलाती है। इसी प्रकार वैज्ञानिकों ने इलैक्ट्रोनिक माइक्रोस्कोप की सहायता से किए गये परीक्षण के द्वारा ज्ञात किया कि हाईड्रोजन एटम की न्यूक्लियस का आकार 10^{-15}m के लगभग है। अर्थात हाईड्रोजन एटम के 1/100000 (लाखवें) हिस्से के आकार का उसका न्यूक्लियस है। इसको समझने के लिये कल्पना कीजिये कि हाइड्रोजन एटम का आकार एक 100 मी0 लम्बी चौड़ी और ऊंची इमारत (फुटबोल फील्ड़) है। तो उसकी न्यूक्लियस का आकार 1 मि0 की गेंद

के बराबर है। वैज्ञानिकों द्वारा ज्ञात जानकारी के अनुसार इलेक्ट्रोन का वजन न्यूक्लियस के वजन का 1/1850 भाग के लगभग है। कहने का तात्पर्य है कि पूरे एटम का वजन न्यूक्लियस में ही निहित है। अर्थात एक फुटबाल फील्ड़ जैसे एटम में पदार्थ मात्र 1 मि0मी0 का स्थान घेरे हुऐ है। बाकी सभी जगह मात्र शून्य ही विद्यमान है। अगर सृष्टि के सबसे हल्के और छोटे एटम की संरचना में सभी जगह मात्र शून्य ही व्याप्त है तो अन्य बड़े ऐलीमेन्ट के परमाणुओं में यह शून्य और ज्यादा व्याप्त होगा क्योंकि एटम के साइज बड़ते रहने के उपरान्त भी न्यूक्लियस के आकार में ज्यादा अन्तर नहीं आता है।

कहने का तात्पर्य है कि जिस पदार्थ को हम सृष्टि, पृथ्वी, वस्तु, शरीर इत्यादि मानते हैं वह वास्तव में मात्र शून्य ही है जिसमें प्रस्तुत पदार्थ कण नगण्य आकार के है और अणु एवं परमाणु को उनका रूप मात्र चुम्बकीय/इलैक्ट्रोनिक तरंग फोर्स से प्राप्त हो रहा है। वास्तव में यह चुम्बकीय तंरग ही सामान्य चेतन है जिसका न कोई रूप है न संहिति और न ही कोई आदि अथवा अन्त/इनकी पोटेन्सी डिस्टेन्स के अनुसार कम या ज्यादा होती रहती है परन्तु यह पूरी सृष्टि में व्यापक हैं और चारों तरफ विद्यमान हैं।

उपरोक्त के कहने का तात्पर्य है कि यह संसार मिथ्या (विज्ञान के अनुसार चुम्बकीय तंरग़ों) से निर्मित है। हम अपनी इन्द्रियों के द्वारा जो अनुभूत करते हैं हमें उसी प्रकार का संसार दृष्टिगोचर होता है। अर्थात यह संसार हमारी अपनी कल्पना के अनुसार रचित है परन्तु वास्तव में यह सब एक चुम्बकीय फील्ड़ जिसे वेदान्ती ब्रह्म कहते है वह मात्र है। अतः हमारा वास्तव में स्वरूप ब्रह्म स्वरूप है और यही सभी प्राणियों और पदार्थ, पिण्ड़ों और खगोलों, युनिवर्स इत्यादि का भी है। अतः जब हम कहते है अहम् ब्रह्मास्मि तो उसका अर्थ है कि हम वास्तव में यह चुम्बकीय फील्ड़ मात्र है जो सर्वत्र, सभी कालों में और सभी अवस्थाओं में विद्यमान है।

'सोहम्'

आर. के. मिश्रा,
दिल्ल

''श्रुति ज्ञान''

श्रुतिज्ञान का स्वरूप क्या है? वह यह है कि ज्ञान दो चीजें नहीं गढ़ता। सच्चा ज्ञान लौकिक ज्ञान, स्मृति ज्ञान, चुटकुले का ज्ञान, व्यावहारिक ज्ञान सब में एक को बनाता है। ज्ञाता और एक को बनाता है श्रेय। जो परमार्थ–सच्चा ज्ञान है, वह ज्ञातापने का अभिमान पैदा नहीं करता। वह जानने वाले को ज्ञानी नहीं बनाता और विषय को श्रेय नहीं बनाता तब सच्चा ज्ञान होता है। इस को जाना है। यदि जाना हुआ पदार्थ अलग–अलग हो गया तब भी सच्चा ज्ञान नहीं हुआ। तो सच्चा ज्ञान पूर्ण है। **साभार – स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती**

परम पूज्यनीय 108 श्री स्वामी शुकदेवानन्द जी का योग शिविर में ''उनविंशत् पुष्प''

यथाकाश स्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा स्र्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय।। **गीता 9:6**

जैसे आकाश से उत्पन्न हुआ, सर्वत्र विचरने वाला महान् वायु सदा ही आकाश में स्थित है, वैसे ही मेरे संकल्प द्वारा उत्पत्ति वाले होने से सम्पूर्ण भूत ईश्वर में स्थित हैं।

समाज में हम लोग साधारण चर्चा में बोला करते हैं कि ''अन्तर्यामी जाने'' यह अन्तर्यामी ही ईश्वर है, इसी का नाम नारायण है। पौराणिक भाषा में विष्णु का निवास क्षीरसागर में बताया गया है। विष्णु के नाभि कमल से ही ब्रह्मा जी की उत्पत्ति हुई है और विष्णु भगवान के कानों के मैल से दो राक्षस मधु और कैटभ नाम के उत्पन्न हुए। उन दोनों राक्षसों के भय से भयभीत होकर ब्रह्मा जी ने विष्णु भगवान की स्तुति की, फलस्वरूप विष्णु भगवान से जागकर राक्षसों को देखा। राक्षस विष्णु भगवान से युद्ध करने को उद्यत हुए तथा वह युद्ध पांच हजार वर्षों तक चलता रहा। जब युद्ध में न तो विष्णु भगवान ही पराजित हुए और न ही वे दोनों राक्षस ही। दोनों राक्षसों ने प्रसन्न होकर विष्णु भगवान से कहा – हम तुम पर प्रसन्न हैं, हम दो हैं और तुम अकेले हो फिर भी हम दोनों मिलकर भी तुमको पराजित नहीं कर पाए, इसलिए हम तुमको वरदान देना चाहते हैं जो इच्छा हो सो मांग लो। विष्णु भगवान बोले यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यह वरदान दें कि हम आपको मार सकें। मधु कैटभ बोले – ठीक है! यदि आप हमें मारना ही चाहते हैं तो आपको हमें ऐसे स्थान पर मारना होगा जहाँ जल न हो।

विचार करने की बात है कि यह मधु कैटभ कौन हैं और ब्रह्मा कौन हैं तथा क्षीरसागर क्या है? हमारा हृदय ही क्षीरसागर है। सर्वव्यापी चेतन ही हृदय में ईश्वर नारायण एवं विष्णु भगवान आदि नामों से जाने जाते हैं। यही चैतन्य अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार के रूप में चतुर्मुख ब्रह्मा हैं यह मधु कैटभ कौन हैं? हमारे अन्तःकरण में राग एवं द्वेष तथा अन्य द्वन्दात्मक भाव हैं। यही हमारे राग द्वेष शत्रु बनकर हमको खाने को तैयार हैं। इनको मार सकने में विष्णु भगवान समर्थ नहीं हो पाए जब तक कि उन्होंने स्वयं ही अपने मारने का उपाय नहीं बताया।

विचार करने की बात है कि ''जल क्या है।'' यह हमारी इन्द्रियों में जिव्हा का नाम ही रसना है। यह रसना हमारी स्वाद इन्द्रिय भी है तथा वाणी भी। कर्मेन्द्रिय के रूप में वाणी है एवं स्वादेन्द्रिय के रूप में रसना है। जब तक हम इस रसना यानी भोजन पर नियंत्रण नहीं पा लेते, तब तक रसेन्द्रिय पर नियंत्रण के लिए प्रयास जारी रखना पड़ेगा। स्वाद पर विजय पाने का अर्थ भोजन का त्याग करना नहीं है अपितु भोजन पर नियंत्रण रखना हैं भोजन का प्रभाव हमारी वाणी पर रहता है,

पेट में ही इस चलते–फिरते शरीर रूपी वृक्ष की जड़ें हुआ करती हैं। भोजन परिपक्व, रसयुक्त, चिकना, ताजा तथा स्वादयुक्त होना चाहिए जो पचने में हल्का एवं स्वास्थ्यवर्धक हो। भोजन का प्रभाव हमारी वाणी एवं व्यवहार पर भी होता है, इसी का प्रभाव हमारी वासनाओं पर भी पड़ता है।

इस संसार में पांच विषय शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध हैं। एक–एक विषय को हम एक–एक इन्द्रिय से ग्रहण करते हैं शब्द का ग्रहण कानों से स्पर्श का त्वचा से, रस का जिव्हा से, रूप का नेत्रों से एवं गंध का नासिका से होता है। वह पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ हमारे शरीर में पांच खिड़कियों की तरह हैं एवं मन जिस इन्द्रिय के साथ होता है उसी विषय का हमें ज्ञान होता है। बिना मन के न तो कोई कर्मेन्द्रिय काम कर सकती है और न ही कोई ज्ञानेन्द्रिय ही। अतः मन ही इन्द्रियों के माध्यम से समस्त विषयों का भोगनेवाला है तथा समस्त इन्द्रियों के राजा के रूप में मन ही काम कर रहा है। मन इन्द्रियों का राजा है भगवान श्री कृष्ण ने श्री मद्भगवद् गीता 10:22 में कहा है कि ''इन्द्रियाणां मनः च अस्मि'' इन्द्रियों में मन मैं ही हूँ। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को सूक्ष्म शरीर (अन्तःकरण, भीतर की इन्द्रियाँ) कहते हैं।

इस शरीर रूपी रथ के इन्द्रियां घोड़े हैं, मन लगाम है, बुद्धि सारथी है। मन रूपी लगाम जब बुद्धि रूपी सारथी के नियंत्रण में होती है तब हमारी संसार रूपी यात्रा सफल होती है। ह्रदय विशिष्ठ चेतन तभी मधु – कैटभ रूपी राक्षसों पर विजयी होता है यही ह्रदय विशिष्ठ चेतन नारायण है।

जीव को इसी नारायण को पहिचानना है इसकी पहिचान करने के लिए संसार पर विजय पानी होगी जो मधु – कैटम रूपी राग–द्वेष से उत्पन्न हैं। इन पर विजय पाने के लिए इस संसार सागर के रस से विरक्त होना जीव के लिए अनिवार्य है।

– संकलनकर्ता

प्रमोद कुमार गुप्ता

''योग प्रशिक्षक'' झांसी

हम अविद्याविषयक नामरूपमय उपाधि तथा उसके अभाव के कारण ही एक मात्र (निरूपाधिक) आत्मा की (औपाधिक) विशेषता मानते हैं। बन्ध – मोक्षादि शास्त्र के व्यवहार के लिए ही आत्मा का अविद्याकृत नाम रूप उपाधिमूलक विशेष माना गया है, परमार्थतः तो अनुपाधिकृत एक अद्वितीय तत्त्व ही मानना चाहिए, जो सम्पूर्ण तार्किकों की बुद्धि का अविषय, अभय और शिवरूप है। उसमें कर्तृत्व भोक्तृत्व अथवा क्रिया कारक या फल कुछ भी नहीं है, क्योंकि सभी भाव अद्वैतरूप हैं।

– प्रश्नोपनिषद्

ॐ गुरू परमात्मनेनमः

कुसंग का साथ

जिस समय पिता हिरण्यकशिपुक मारा गया और प्रहलाद पिता के स्थान में राज्य पर बैठा, तब शुक्राचार्य ने कहा है प्रहलाद सच कहो – पिता के नाश के वास्ते विष्णु को तूने कहा विष्णु ने आप ही मारा था। प्रहलाद ने कहा – उसने जो कुछ किया सो आप ही किया है, पिता के नाश की मुझ को इच्छा नहीं थी। शुक्राचार्य ने कहा तेरा जीना मृत्यु से भी बुरा है। जब तक पिता का बदला वैरी से न ले लेवें तो जो कुछ खाये पीवे तुझको अभक्ष्य है। पिता का बदला लिये बिना पुत्र जो कुछ करता है सो अयोग्य है। प्रहलाद ने कहा– प्रथम तुम कहते थे, गोविन्द का भजन कर अब कहते हो गोविन्द को मारो, जब हिरण्यकशिपु को उसके मारने की शक्ति नहीं हुई तो मैं कैसे मरूंगा। शुक्राचार्य ने कहा, वह अहंकार करता था, तू आत्म शक्ति रखता है। प्रहलाद को पिता ने कितनी त्रासना दी परन्तु प्रहलाद – निश्चय से चलायमान न हुआ और किंचिन्मात्र संग शुक्र का हुआ तो प्रहलाद कहने लगा हे गुरू? आज्ञा करो तो शक्ति रखता हूँ। प्रहलाद ने राक्षसों को आज्ञा दी कि विष्णु के मारने वास्ते शस्त्र अस्त्र लेकर मैदान में डेरा करो। पाँच योजन नगर से बाहर उतरा विष्णु अन्तर्यामी ने विचारा कि प्रहलाद सत्बुद्धि को त्याग कर कुबुद्धि हुआ है परन्तु क्या करें कुसंग ऐसा ही है। किन्तु भक्त की कुमति दूर करनी चाहिये ऐसा विचार कर विष्णु ने बृद्ध ब्राह्मण कृशरूप होकर लकड़ी हाथ में लेकर, काँपते–काँपते आए। लोगों से पूछा यह धूम धाम किसकी है। लोगों ने कहा प्रहलाद की विष्णु के साथ युद्ध करने की इच्छा है। ब्राह्मण ने कहा प्रहलाद ब्राह्मणों पर दयालु है। लोगों ने कहा पहले था अब नहीं। ब्राह्मण, प्रहलाद के निकट गया। प्रहलाद ने कहा तू कौन है किस काम के लिये आया है? ब्राह्मण ने कहा तेरी शरण में आया हूँ, ईश्वर के अन्याय से अति दुःखी हूँ। ईश्वर ने मेरा सर्व कुल नाश किया है। मैंने सुना हे कि तून भी ईश्वर के नाश की इच्छा की है, तू धन्य है। यह बुद्धि तूने अपने गुरू से पाई है। परन्तु कहो उसका ठिकाना कौन सा है ? ताकि मैं भी तुम्हारे संग जाकर माता पिता का बदला लूँ। प्रहलाद ने कहा ठिकाना उसका मैं नहीं जानता तब ब्राह्मण सुनकर हंसा और कहा जैसा मैं मूर्ख था वैसा ही तुझको देखा परन्तु तेरे बल की प्रथम परीक्षा करता हूँ। यह लकड़ी मैं पृथ्वी पर डालता हूँ उसको उठाकर मेरे हाथ में दे, तो मैं जानूगाँ कि यह काम तुझ से होगा, प्रहलाद ने कहा अच्छी बात है। ब्राह्मण ने लकड़ी पृथ्वी पर डाल दी प्रहलाद अपना बल लगाया परन्तु उठा न सका। तब उसने जाना यह विष्णु है ब्राह्मण के चरणों में गिरा, चरणों पर सिर रखा और विनती की – मैं तुम्हारी शरण में हूँ मेरा अपराध क्षमा करो। विष्णु ने कहा उलटा तू मुझ पर क्षमा कर मेरे मारने की इच्छा की थी। प्रहलाद ने कहा – यह अपराध मेरा नहीं, किन्तु यह उपदेश शुक्राचार्य का है विष्णु ने कहा इसी से गुरू देखकर करना चाहिये।

''गुरू कीजिए जान कर पानी पीजै छानकर'' गुरू वही है जो ज्ञान विज्ञान से पूर्ण हो।

शिवोऽम

– श्रीमती रूकमणी शर्मा

जनकसुता जगजननि जानकी

सीता भूमि वनया हैं, किन्तु मिथिला नरेश जनक की पुत्री हैं, यह लोक विश्रुत है। यही उनका लौकिक परिचय है। ऐश्वर्य की दृष्टि से वे आदिशक्ति जगजननी है। यह उनका यथार्थ स्वरूप है। पिता के नाते उन्हें जानकी कहते हैं, और उत्पत्ति के नाते उनहें सीता कहते हैं। 'सीता' अर्थात हल का फाल। फाल के भूमि स्पर्श से उनका जन्म हुआ था। उनका लालन–पालन जनक के राजमहल में हुआ।

मूलतः वे भगवान राम की आह्लादिनी शक्ति है। उनमें उत्पत्ति, पालन प्रलय की शक्ति निहित है। उद्भव स्थिति, संहारकारिणीं, क्लेश हारिणीं। आकाशवाणी के माध्यम से स्वयं भगवान ने कहा था – नारद बचन सत्य सब करि हौं, परम शक्ति समेत अवतरि हौं।।

सीता सर्वश्रेयस् कारणी है। वे भक्ति स्वरूपा हैं, करूणा और वात्सल्य की मूर्ति है। वे जीव को भगवान से मिलाती है। उनकी करूणामयी सहायता के बिना परमात्मा राम की प्राप्ति संभव नहीं होती। अगणित उमा, रमा, ब्रह्माणी की वे जन्मदात्री हैं। लव निमेष में उनके भुवनों की रचना करने में वे समर्थ है। वे शक्ति स्वरूपा है।

रामचरित मानस समस्त वेदशास्त्रों का सार है। इसमें भगवद्–शरणागति के पूर्णघटकत्व का वर्णन हैं सीताजी की कृपा हो जाये, तो राम से मिलना हो जाये। जीव का भगवान से मिलना पुरस्कार वैभव कहलाता है और उसकी स्वामिनी सीताजी है। सीताजी में संघिनी, संवित्–हलादिनी का सार है, और भगवान राम में सत्–चित्–आनन्द का वैभव है। ऐश्वर्य, ब्रह्मविद्या और आनन्द के वैभव की समग्रता पाने के लिए शरणागति अनिवार्य है। उनकी कृपा के बिना भक्ति में प्रवेश असम्भव है। चिद् राज्य में प्रवेश के लिए जीव को स्वरूपतः अधिकार है। आनन्द राज्य में प्रवेश के लिए श्री सीता जी की कृपा आवश्यक है। बाल्मीकि रामायण में सीता जी का अतिशय महत्व है – 'सीतायाः चरितं महत'। तुलसीदास जी ने भी उनके महात्म्य को इन शब्दों में स्वीकारा है – 'जनक सुता जगजननि जानकी'। जगत की जननी हैं, कारण स्वरूपा है।

श्रीराम में ऐश्वर्य का आधिक्य होने पर भी जानकी के सानिध्य में माधुर्य ही विशेष उल्लसित होता है। इन्द्रपुत्र जयन्त ने कौवे का रूप धरकर राम का अपराध किया। उसे अपने माता–पिता बन्धु–बान्धवों का अभिमान था। किन्तु राम विमुख होने पर ''काहू बैठन कहे न ओही। राखि को सके राम कर द्रोही।। किन्तु जगजननी ने उसकी रक्षा की।

राम सब के रक्षक है। वैसे राम बिना सब अरक्षित है। शरण में आये हुए जयन्त की वे क्या रक्षा करते। तिनके को ब्रह्मास्त्र से अभिमंत्रित कर जयन्त के पीछे राम ने छोड़ा। जयन्त सभी लोकों में भागता फिरा। कहीं शरण नहीं मिली। उसने भक्तापराध किया था। माँ का अपराध किया था, उसे मृत्यु दण्ड मिलना था। नारदजी ने देखा और उन्हें दया आ गयी। नारद जीव मात्र के गुरू हैं। उन्होंने जयनत को राम की शरण में भेजा। सन्त जीव की विपत्ति दूर करने के लिए उसे राम से जोड़ते हैं। उसे अपना नहीं बनाते। जयन्त ने जाकर कहा – मैं शरणागत हूँ। राम उसे प्राण दण्ड

प्रदान करने वाले थे, किन्तु जानकी जी के हृदय में कृपा–करूणा उमड़ आयी और उन्होंने जयन्त के प्राण बचा लिए। अपराधी होने के बावजूद वह जानकी माता की कृपा करूणा से बच गया। वहीं, बालि न बच सका, क्योंकि सीताजी साथ न थीं। कृपा–करूणा उसे प्राप्त न हो सकी। विमुख को अपनी कृपा करूणा देना ही जानकी जी का पुरस्कार वैभव है।

राम निष्कपट, सरल, चित्त वालों से ही प्रेम करते हैं छली–कपटी उन्हें तनिक भी पसन्द नहीं, उन्हें वह अपनी कृपा प्रदान नहीं करते, दण्ड अवश्य देते हैं परन्तु सीताजी मनुष्य के हृदय को सुन्दर और राम–कृपा के योग्य बनाती हैं –

'ताके जुग पदकमल मनाऊँ। जासु कृपा निर्मल मति पांऊँ'। सीताजी से उसे निर्मल मति मिलने पर राम उसे स्वीकार करते हैं।

राक्षसों का बध तो भगवान के संकल्प मात्र से संभव हो सकता था। उन्हें लंका जाने की कोई आवश्यकता ही न थी। परन्तु सीता के आदर्श रूप चरित्र का उद्घाटन इसमें मुख्य उद्देश्य रहा। अपने प्रियतम के यश को उज्जवल बनाने के लिए, लोक शिक्षा हेतु सीताजी लंका गयीं। राम ने भी इस संदर्भ में जो कुछ किया, वह लोक शिक्षण के लिए ही किया।

तुलसी ने मानस के मंगलाचरण में सीताजी के वास्तविक स्वरूप का वण्रन किया है – उद्भव स्थिति संहारकारिणी क्लेशहारिणी सर्वश्रेयसकरीं – हैं जानकी। जगज्जननी हैं। संसार की उत्पत्ति की कारणभूता है। पालन न किया जाये, तो उत्पत्ति का कोई अर्थ ही नहीं। वे सभी जीवों का पालन करती है। अस्तु सच्चे अर्थ में वे माता हैं। वे विनाश की हेतु हैं संसृतिं में तीनों क्रियायें होनी अनिवार्य हैं। तभी सृष्टि चक्र पूर्ण होता है। जानकी भगवान राम की आद्या शक्ति है। वे प्रभु की इच्छानुसार संसार चक्र को पूर्णता प्रदान करती हैं।

सीताजी के हृदय में करूणा का सिन्धु लहरा रहा है वे अपने पुत्र–पुत्रियों को दुखी नहीं देख सकती। राम ने प्रतिज्ञा की थी – अन्यायी, अत्याचारी और राक्षसों का बध करूंगा। परन्तु सीताजी आग्रह पूर्वक मना रही थीं। वन मे जाना है, उस ही जीवन व्यतीत करना है, तो शस्त्र रख दीजिए फिर वन चलें। राम ने कहा – मैं सब का परित्याग कर सकता हूँ, अपनी प्रतिज्ञा का परित्याग नहीं कर सकता।

(रामायण से) सीताजी ने पुरूषवर्ग में तीन दोष बताये हैं (1) स्त्री के प्रति कुदृष्टि, (2) असतय भाषण, (3) निरपराध का वध। राम में किसी दोष होने का प्रश्न ही नहीं। किन्तु तीसरे दोष को उनकी लीला के संदर्भों में यत्र–तंत्र देखा जा सकता है। वे भक्त पक्षपाती हैं। इसलिए भक्तों के लिए अथवा भक्त के चाहने पर वे अत्याचारी का वध करने में देर नहीं करते। किन्तु सीताजी के सानिध्य हरने पर वे ऐसा नहीं कर पातें धन्य हैं – माता जानकी। करूणामयी माता।

जानकी प्रभु की लीला सहचरी हैं। जब प्रभु को लीला–विस्तार करना होता है, तब वे सीताजी की सहायता लेते हैं मानस में सर्व प्रथम मारीच प्रकरण में इसे स्पष्टतः देखा जा सकता है। प्रभू कहते हैं –

सुनहू प्रिया व्रत रूचिर सुसीला।
मैं कछु करब ललित नर लीला।

तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा।
जै लगि करौ निशाचर नासा।।

प्रभु पद धरि हिय अनल समानी। मानसः 3/24

प्रभु जब सृष्टि की रचना करना चाहते हैं, तब जानकी जी सृष्टि रचना में प्रवृत्त हो जाती है। और अति अल्प समय में अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना कर देती हैं। इसे मानस में दर्शाया गया है–

लव निमेष महँ भुवन निकाया।
रचइ जासु अनुशासन माया।'' मानस

'एक रचइ जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहि निज बलताके''। यह प्रभु की विद्या माया अर्थात सीताजी का वास्तविक स्वरूप है। अविद्या माया प्रकृत है। नाशवान है, और सत–रज–तम का समावेश उसमें रहता है, जब कि विद्या माया (सीता) त्रिगुण से परे तथा उनकी नियन्ता हैं। सबसे विशिष्ठ बात यह है कि वे भक्ति मार्ग की आचार्या हैं। जीव को श्रेयस की प्रदाता हैं। जय–जय श्री जानकी।

पं0 चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी
अध्यक्ष
मानस समाज

''अन्तर्यामी''

बुद्धि का जो आश्रय है, बुद्धि का जो प्रकाशक है, उसको बुद्धि कभी देख नहीं सकेगी। इसलिए बुद्धिका जो विषय होगा वह जगत् ही होगा, जगत् का समूचा रहस्य नहीं होगा। इसलिए यदि कोई भी व्यक्ति यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र या समाधि या विज्ञान का नाम ले करके यह दावा करता है कि उसने जगत के रहस्य को जान लिया है तो वह झूठ नहीं बोलता है।

सबके अन्तर में जो निरन्तर है उसको पहचानने के लिए महापुरूष की शरण ही एक मात्र उपाय है। महापुरूष की कसौटी क्या है? जो आत्मा और परमात्मा की एकता को नहीं बताता वह या तो जानबूझकर छिपाता है या वह स्वयं अज्ञानी है। यह श्रुति संविधान ही महापुरूष की कसौटी है।

साभारकृत – ब्रह्मसूत्र प्रवचन
शारीरिक भास्य
द्वारा – स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

''गुणातीत''

सृष्टि में सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण तीन गुणों में ही मनुष्य जीवन के समस्त व्यवहार हो रहे हैं।

प्रायः सतोगुण में स्थित रहने के लिए ही कहा जाता है, किन्तु अगर ऐसा माना जाए कि रजोगुण एवं तमोगुण अधोगति को ले जाने वाले हैं तो वह हमारी भूल ही होगी जीवन में जो भी कर्तव्य कर्म कृषि, नौकरी, व्यवसाय आदि हो रहे हैं वह सारे के सारे रजोगुण से ही सम्पन्न हो रहे हैं। हाँ यह अवश्य है कि रजोगुण के बढ़ जाने पर सतोगुण का प्रभाव एवं ज्ञान दब जाता है। आलस्य, प्रमाद, निद्रा आदि स्थितियाँ तमोगुण की अधिकता होने पर ही आती हैं जब शरीरकार्य करते–करते थक जाता है शरीर कार्य तब शारीरिक एवं मानसिक विश्रांति के लिए निद्रा ही सहारा होता है, जो तमोगुण के आधिक्य से ही संभव हो पाता है। इस प्रकार से रजोगुण एवं तमोगुण का भी जीवन में विशेष महत्व है, अगर रजोगुण नहीं होगा तो फिर जीवन यापन के सारे आवश्यक कर्म कैसे हो पाऐंगे?

सतोगुण में रहना चाहिए का तात्पर्य यह नहीं कि रजोगुण एवं तमोगुण को छोड़ ही दें, बल्कि आवश्यक है कि तीनों गुण जीवन में सम्यक् रूप से रहें और यह तीनों गुण स्वभाव एवं आवश्यकता अनुसार स्वाभाविक रूप से उत्पन्न और कम–अधिक होते रहे हैं। एक गुण की अधिकता होने पर शेष दोनों गुण गौण हो जाते हैं। जाग्रत, उत्तिष्ठ अर्थात् जागो, उठो अपने स्वरूप को जानने के लिए सतोगुण में स्थित हो जाओ। सतोगुण ज्ञान की अवस्था है जिसमें ईश्वर का ध्यान, भगवत् चिंतन, स्वाध्याय, सत्संग आदि परमात्म सम्बन्धी कार्य मनुष्य करता है। सात्विक गुणों को बढ़ाने के लिए सत् शास्त्रों का स्वाध्याय एवं निधिध्यासन करें। खान पान भी सात्विक रखें। तामसी भोजन को निषिद्ध समझकर उसका त्याग करें। पवित्र, आध्यात्मिक क्षेत्र तीर्थ आदि में अधिक समय व्यतीत करें एवं अपने समय का समुचित उपयोग भजन, ध्यान आदि भगवत् चिन्तन में लगाये। शास्त्र विहित शुभ कर्म ही करें, निषिद्ध कर्म तो कभी भी न करें सतोगुण को जीवन में विशेष स्थान दें एवं शरीर को ऊर्जावान बनाए रखने के लिए निद्रा आदि अवस्थाओं द्वारा मानसिक संतुलन को बनाए रखना भी परम आवश्यक है।

''निज स्वरूप तो सतोगुण से भी परे है'' सतोगुण की अवस्था तो निज स्वरूप को जानने का मात्र साधन है। मनुष्य शरीर का लक्ष्य तो ज्ञान को प्रकाशित करने वाले को जानना है। यह स्थिति आ जाने पर फिर गुणों के संग न रहकर हम असंग स्थिति को पा जाते हैं। वास्तविक स्थिति तो समदर्शी होकर गुणातीत होने की है जिसमें फिर महापुरूष के लिए मित्र हो या शत्रु दोनों के प्रति ही समान दृष्टि आ जाती है। अर्थात् मित्र के लिए विशेष लगाव या राग नहीं एवं शत्रु के प्रति कटुता या द्वेष भावना नहीं रहती। गुणातीत स्थिति आने पर सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण तीनों गुणों का अतिक्रमण करके जन्म–मृत्यु आदि जीवन के दुखों से व्यक्ति मुक्त हो जाता है। गुणों में निर्लिप्तता होने पर स्वतः सिद्ध अमरता आ जाती हैं गुणातीत महापुरूष गुणों से द्वेष नहीं करता और

न ही इनकी इच्छा करता है क्योंकि उसकी दृष्टि में तो एक परमात्म तत्त्व के अलावा कुछ होता ही नहीं।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।।

श्री मद्भगवद्गीता 12:17

जो पुरूष शुभाशुभ के फल का त्यागी होता है ऐसा वह परमात्मा को प्रिय होता है।

गुणातीत अवस्था का साधन भगवान की भक्ति भी है जिससे भगवान का सहारा, विश्वास एवं बल मिलता है और भक्ति भी ज्ञान प्राप्ति का साधन है। सत्त्व, रज और तम तीनों गुण विनाशी देह से बांधते हैं।

प्रकृतिजन्य तीनों गुणों के प्रभाव से मुक्त होने पर ही गुणातीत अवस्था आती है, जो बन्धन मुक्त होने की अवस्था होती है। **– प्रमोद कुमार गुप्ता, झांसी**

''गुरू – आस्था''

समुद्र की बाहरी सतह पर उठती गिरती लहरें जिन्हें हम अपनी खुली आँखों से देख पाते हैं, केवल वही समुद्र नहीं हैं वह तो, उसका बाल स्वरूप है। समुद्र के अन्दर भी बहुत कुछ छुपा हुआ है। समुद्र की गहराई अथाह है। प्रचण्ड जल धाराएँ नीचे भी बहती रहती हैं। असंख्य जलचर हैं, इसके अतिरिक्त खनिजों का भण्डार है। इसी प्रकार मानव जीवन को देखें तो कमाना, खाना, जागना–सोना, हँसना–रोना जैसे क्रिया कलाप मात्र ही जीवन नहीं है। मानव जीवन को गहराई से समझें, तो अनेक प्रकार के सुख दुःख आनंद, आकर्षण, उद्वेग, भय, भ्रम आदि भी दिखाई देते हैं। इतना ही नहीं प्रचण्ड विरोधी विचारों की धाराएँ भी बहती रहती हैं। कभी तो अचानक अनचाहे तूफान आ जाते हैं, जो धैर्यवान पुरूष तक को विचलित कर देते हैं।

इसलिए हमें अपने जीवन में आस्था और विश्वास का महत्व समझना चाहिए। आस्था और विश्वास के बल पर मनुष्य बड़ी से बड़ी मुश्किल को पार कर जाता है। आस्था एक लंगर की भांति मनुष्य को पथ भ्रष्ट होने से तथा दिशा हीन होने से बचाती है। मनुष्य भवसागर में तैरता है, परन्तु डूबने से बच जाता है।

इसलिए हमें गुरू के वचनों पर विश्वास करना चाहिए तभी हमारा मानव जीवन सफल हो सकता है।

– श्रीमति कृष्णा श्रीवास्तव

बण्डा

संवेदना

मानव जीवन संवेदना का अद्‌भुत संगम है। पश्चिमी सभ्यता के दुष्प्रभाव तथा आधुनिकता की दौड़ में मानव जीवन एकांशी एवं यांत्रिकी बन गया है। स्वार्थपरता ने मुनष्य का जो नैतिक पतन किया है वह आज संसार के हर कोने–कोने में परिलक्षित हो रहा है।

मानव जीवन को सम्वेदना का पर्याय भी कहा जाता है। संवेदना का अर्थ है सम+वेदना अर्थात् दूसरे की पीड़ा उसके दर्द को उसी रूप में अर्थात् समान रूप से अनुभव करना। बुद्ध की करूणा इस बात का मार्मिक उदाहरण है तभी तो वे एक निरीह पशु के स्थान पर अपना गला कटवाने के लिए तैयार हो जाते हैं। परन्तु आज का मानव 'स्व' की परिधि में सिमट गया है। उसे दूसरों का दर्द न तो पीड़ित करता है नहीं उसका कष्ट उसे दुःख पहुंचाता है। प्रतिदिन ही दुर्घटनाएं, जलते, तड़पते, इंसानों की चीखें, नारी की तार–तार होती अस्मिता, हिंसा की वीभत्स घटनाएं यह कुछ भी इंसान को आज प्रभावित नहीं कर रही हैं। मनुष्य यंत्रवत केवल अपने स्वार्थ के लिए जीता है एवं उसी में मर भी जाता है।

इसी संसार में जानवर भी रहते है जो आपनी जाति के अन्य पशुओं के साथ मिलकर दुख सुख का सामना करते हैं। कोई आपदा आ जाए, तो वे एक हो जाते हैं। वे अपनी मर्यादाओं से भली भांति परिचित हैं परन्तु इंसानों को इन्सानियत से कोई तात्पर्य नहीं रह गया है। ये बात नहीं कि हमें दर्द ही नहीं होता, दर्द तो होता है लेकिन केवल अपने स्वजनों के दुख पर ही। आज हमें अपनी छोटी सी पीड़ा भी दूसरे की मौत से अधिक दुखदायी एवं दर्दनाक लगती है। हमारा अपना कोई हादसे में फंसा हो तो हमें मर्मांतक पीड़ा होती है परन्तु उसी जगह दूसरे को हम अनदेखा कर देते हैं। अपने पेट की भूख के लिए हम दूसरे की रोटी छीनना भी बुरा नहीं समझते।

स्वार्थ इन्सान को संवदेना शून्य बना देता है। आज निजी स्वार्थों के वशीभूत होकर इंसान सेवा सहयोग एवं भाव संवेदना से बहुत दूर हो गया है। इस संकीर्ण दायरे को तोड़कर ही हम इंसान कहलाने योग्य बन सकते हैं। परमार्थ, त्याग, सहयोग एवं सेवा ही इंसानियत के आभूषण हैं। जीवन को बहुआयामी बनाना है तो हमें स्वार्थ की इस घनी काली एवं मोटी दीवार को हटाना होगा हमें अपने हृदय की खिड़कियों को खोलकर सेवा त्याग–परोपकार एवं सहयोग के प्रकाश को आत्मसात करना होगा तभी इंसानियत के परम आभूषण से हम सुसज्जित हो सकेंगे।

हमें चाहिए कि हम दूसरों की पीड़ा को समझें एवं उसे दूर करने का प्रयास करें। दूसरों की सेवा सहायता में तत्पर रहें दूसरों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखें अपने स्वार्थ को न देखें। यही वे प्रयास होंगे जो इंसान को इंसानियत के दिव्य आभूषण से विभूषित करेंगे।

– कुमकुम बिसारिया

वेदान्त : एक अलौकिक दर्शन

लोक में जन्मा हर जातक लौकिक परम्पराओं से आवृत्त हैं जिससे वह जन्म का मौलिक अर्थ क्या है इससे अनभिज्ञ है तथा आजीवन मृत्यु के भय से भयभीत रहता है। परन्तु जिस क्षण उसे यह ज्ञान सद्गुरू की अनुकम्पा से प्राप्त होता है कि मैं शिव तत्व हूँ मेरा संसार से कोई सम्बन्ध नहीं है ''अहं भोजनम् नैव भोज्यम् न भोक्ता चिदानन्द रूपो शिवोऽहम्, शिवोऽहम्।।'' तभी वह तत्त्व ज्ञान को समझ पाता है। तत्व ज्ञान ही वेदान्त का मूलभूत ज्ञान है। मैं ''तू'' के भेद से ऊपर उठकर जीवन ''स्व'' में स्थित हो जाय तो जन्म ही सार्थकता का आभास होने लगे। संसार का सबसे जटिल प्रश्न है मैं कौन हूँ जिसका उत्तर ढूँढने में जीवन व्यतीत हो जाते है। शंकराचार्य जी रचित चर्पमञ्जरी में उल्लिखित है कि ''कोऽहं कस्त्वम् कुतः आयातः को में जननी को में तातः'' अर्थात् मैं कौन हूँ? तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? मेरी माँ कौन है? तथा मेरे पिता कौन है? इस प्रकार की ये प्रश्नों की झड़ी न केवल मनोमस्तिष्क को झकझोरती है बल्कि अन्तरावलोकन करने को बाध्य करती है जिसका चिन्तन जब प्रगाढ़ होता जाता है मन्थन की गति तीव्र होती है तो वेदान्त का प्रादुर्भाव होने लगता है। अन्ततः जीव को बोध होता है कि मैं तो नदी की उस नाव की तरह हूँ जिसे रहना तो नदी के जल में है, परन्तु जल को अपने मैं नहीं आने देना है अथात् संसार में रहो पर संसार की सांसारिकता को चित्त में न आने दो।

जीव और ब्रह्म अंश और अंशी है अंश तब तक चैन नहीं पा सकता जब तक वह अंशी में पूर्णतः न मिल जाय कबीर इस रहस्य को दोहे जैसे छोटे छन्द मे अल्प शब्दों द्वारा समझते हैं – कबीर सूता क्या करे काहे न देखे जागि, जाके संग ते बिछुड़िया ताही के संग लागि।। अर्थात जीव तुम सो कर क्या कर रहे हो जाग कर क्यों नहीं देखते, जिसके संग से तू बिछड़ा हुआ है उसी के साथ क्यों नहीं जुड़ जाता अर्थात् उसी से तदाकार क्यों नहीं हो जाता। दर्शन की दृष्टि भी बड़ी पैनी होती है वह भी इसी वेदान्त तथ्य को समझाती हुई कहती है कि यदि पृथ्वी के किसी मिट्टी के ढेले (टुकड़े) को आकाश में फेंको तो वह जमीन पर आ जायेगा क्योंकि मिट्टी का पूर्णांश पृथ्वी है उसी के अंश अर्थात् मिट्टी के ढेले को यदि अलग करोगे तो वह आकाश में तब तक ही जाएगा जब तक आकाश बल काम करेगा उसके बाद वह जमीन पर आ जाएगा अर्थात् अंश अंशी (पूर्णांश) में ही मिल जायेगा उसी प्रकार जीव ब्रह्म ही है जब तक उससे पृथक–पृथक रहेगा। भटकता रहेगा और परमात्म तत्व की प्राप्ति के बाद तो वह ब्रह्म स्वरूप हो जाता है महानन्द, परमानन्द की प्राप्ति का अनुभव करता है झूमते हुए जाता है ''मुझे मेरी मस्ती कहाँ ले के आयी जहाँ मेरे अपने सिवा कुछ नहीं है।''

अर्न्तमुखी इन्द्रियाँ ही अन्तःस्थित ब्रहम् दर्शन कर सकती है दृष्टा अन्तर्दृष्टि से हृदय स्थित जिस दृश्य को भाव पूर्वक देखता है उसे ध्यान कहते हैं अर्थात् ध्यान अर्न्तमुखी क्रिया है तथा दृष्टि बहिर्मुखी क्रिया। गुरू अनुकम्पा से प्राप्त शक्ति ईश्वर दर्शन करा सकती है। अतः अध्यात्म मार्ग में सद्गुरूदेव भगवान व्यक्ति को संस्कारित परिमार्जिता बनाकर ईश्वरानुकूल बना देते हैं जिससे सहज ही परमात्म तत्व का बोध हो जाता है और ''अहं ब्रह्मास्मि'' (मैं ब्रह्मा हूँ) को मानने, जानने तथा पहचानने लगता है। कई जन्मों से चली डगर का गन्तव्य यही हैं इसी से 'पुनरपि जननम् पुनरपि मरणम् पुनरपि जननी जठरे शयनम्'' की प्रक्रिया भी समाप्त हो जायेगी जीव उन्मुक्त कण्ठ से स्वरूप का ज्ञान कराता गाने लगता है ''मैं सत चित् आनन्द रूप, कोई–कोई जाने रे।

विचार विथियों में विचरते हुए निष्कर्षतः ये बोध होता है कि ज्ञान हमेशा ही ज्ञानी को राग–द्वेष मुक्त रखता है अज्ञान के कारण अज्ञानी की दृष्टि में प्रकृति रहती है परन्तु अज्ञानी की दृष्टि का कोई

मूल्य नहीं। ज्ञानी की दृष्टि ही यथार्थ रूप से सत्य है। ज्ञानात्मक दृष्टि से ईश्वर निराकार है परन्तु साकार होता उसी प्रकार सिद्ध होता है जैसे निराकार रहने वाली आकाशीय अग्नि कभी कभी बादलों के भीतर बादलों के रूप में चमकती हुई दिखती है जब अग्नि और जल आदि स्थूल पदार्थ भी निराकार से साकार बन जाते है तब निराकार ईश्वर और प्रकृति के संयोग से साकार वस्तु का उत्पन्न हो जाना कौन बड़ी बात है इस संदर्भ में यह उक्ति समुचित है।

वेद भेद जानें नहीं नेति नेति कहि वैन।

अन्ततः वेदान्तीय दर्शन का सार यह हो सकता है भगवद् दर्शन भवगद् शरण तथा भगवद् स्मरण हेतु जीव को सम्पूर्ण भाव से तीन बातों को स्वीकारना चाहिए।

1. मैं आपका हूँ (ममैवांशों जीव लोके जीवभूतः सनातनः)
2. मैं आपकी शरण में हूँ (यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितम् ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेहं शाधिमां त्वां प्रपन्नः)
3. आपका स्मरण नित्य रहे। (अनन्यश्चिन्तो माम् यो जनाः पर्युपासते)

❖ **आचार्य प्रकाश चन्द्र पुरोहित**

झांसी

''चिन्तन''

ईश्वर तो हैं निराकार, पर मेरे गुरू तो हैं साकार।
गुरू की महिमा अपरम्पार, गुरू करते सबका उद्धार।।

1. पहले तो गुरू बनाना है, फिर जीवन सफल बनाना है।
इस लोक में ऐसा करना है, परलोक को सफल बनाना है।।
अगर ऐसा करो विचार, तो गुरू का हो जाये सत्कार।
गुरू की महिमा अपरम्पार, गुरू करते सबका उद्धार।।

2. तुम विषय भोग में लीन रहे, आगे का नहीं विचार किया।
अपने इस मानुष जीवन पर, तुमने ही अत्याचार किया।।
गुरू की शरण करो स्वीकार, गुरूजी कर देंगे उद्धार।
गुरू की महिमा अपरम्पार, गुरू करते सबका उद्धार।।

3. अब अंत समय की बारी हे, तुम गुरू में ध्यान लगा लेना।
गुरू चरणों की सेवा करके, ये जीवन सफल बना लेना।।
भूल से हुई है त्रुटि कोई, तो गुरू करेंगे बेड़ा पार।
गुरू की महिमा अपरम्पार, गुरू करते सबका उद्धार।।

4. धोखे से यदि कोई भूल हुई, तो प्रायश्चित उसका कर लेना।
गुरू के चरणों की रज लेकर, अब धर्म मार्ग पर चल देना।।
''लंकेश'' तो करते यही विनय गुरू कर दो हम पर भी उपकार।
गुरू की महिमा अपरम्पार, गुरू करते सबका उद्धार।।

– इं. जे.पी. गंगेले ''लंकेश''

झांसी

मौन की साधना

आम तौर पर वाणी को विराम देना मौन कहलाता है, किन्तु 'मौन' वास्तविक अर्थ मात्र चुप रहना ही नहीं, बल्कि उससे कहीं अधिक व्यापक है। वास्तव में मौन समस्त इंद्रियों को ब्राह्म जगत से हटाकर अंतस की ओर केन्द्रित करना है। 'गीता' में भगवान श्री कृष्ण कहते है – गोपनीय रखने योग्य 'भावों' में मौन में हूँ। मौन सतत् प्रक्रिया, है जो आपके चुप रहने से आरम्भ होकर गहन सत्य की खोज तक अनवरत चलती रहती है। मौन हमें अंर्तमुखी बनता हैं अंर्तमुखी व्यक्ति ही आत्मा और परमात्मा के गूढ़ रहस्य को भली–भांति समझते हुये ईश्वर का साक्षात्कार कर पाता है। इसलिए अध्यात्म पथ में पथिकों के लिये मौन को साधना का उपयोगी अंग माना गया है।

मौन एक ऐसा उपाय हे, जिससे आंतरिक जगत के साथ बाहरी दुनिया में भी मदद मिलती हैं मौन से मन की मृत्यु भी हो जाती है और वह शक्तिशाली भी बनता है। जिन्हें मोक्ष मार्ग पर जाना है तो इस उपाय से वह मन को नष्ट कर सकते है और जो भरपूर जिन्दगी जीना चाहते है वे मौन से मन की शक्ति बढ़ा सकते है। योग साधना में तो मौन का वैस ही बहुत महत्व है। कामकाजी या लौकिक जीवन में मौन से सकारात्मक सोच का विकास होता है।

इस तरह की सोच आंतरिक और मानसिक शक्ति को और मजबूत करती हैं चुप रहकर हम अपने आपसे जुड़ते है। स्वस्थ्य रहने के लिए कुछ समय के लिए आप अपने साथ मौन बैठ जायें। न केवल अपनी वाणी को विराम दे अपितु अपने मन में चल रहे विचारों को भी चुपचाप होकर देखते रहे। आप देखेगें कि एक विचार आ रहा है दूसरा जा रहा है। परन्तु नियमित रूप से कुछ समय तक लगातार यदि आप करते रहेंगे तो आप देखगें कि आपके विचारों की श्रृंखला कम होती जा रही है और शनैः शनैः आप उस आनन्द की अवस्था को प्राप्त होते जा रहे है। इस तरह आप विचार शून्य अवस्था में पहुंच जाते है।

मौन वह शून्यावस्था है जहाँ व्यक्ति अंर्तमुखी होकर अनंत की वाणी और आत्मा की पुकार को सुन सकता है। सृष्टि में संपूर्ण जड़ जगत तो मौन का ज्वलंत उदाहरण है ही, यहाँ रहने वाले जीव–जन्तु और पशु–पक्षी भी उतना ही बोलते है जितना आवश्यक है। उनका मौन प्राकृतिक है। मौन की शक्ति अपार है। अत्यक्त होकर भी मौन की भाषा अभित्यक्त हो जाती है। महान कवि विलियम बड्र्सवर्थ प्रकृति के अनन्य उपासक थे। उन्होंने अपने काव्य को मौन और नीरवता का वरदान कहा है। महर्षि रमण प्रायः मौन रहा करते और उसी अवस्था में लोगों की जिज्ञासाओं का समाधान कर दिया करते थे। मौन वाणी का तप है। मौन से भीतरी राग–द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों का नाश होकर मनुष्य की वाणी सिद्ध व पवित्र होती है।

मौन साधना द्वारा व्यक्ति का आत्मबल और कार्य करने की क्षमता बढ़ती है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में कहें तो मौन के वृक्ष पर सदैव शांति के ही फल लगते हैं। मौन का आश्रय लेकर व्यर्थ की कटुता, कलह और विवादों से बचाव के साथ मिथ्या वचन, अपशब्दों के प्रयोग परनिंदा व

अनर्गल बकवास जैसे वाणी के पापों से भी बचा जा सकता है। मौन व्यक्ति की अज्ञानता और मूर्खता पर आवरण डालने में भी सहायक हैं भर्तृहीर ने मौन को अज्ञानता का ढक्कन बताते हुए ज्ञानियों की सभा में अज्ञानियों के लिए मौन को सर्वोत्तम आभूषण और रक्षा–कवच बताया है। ध्यान रहें कि मुख से निकले शब्द कभी वापस नहीं लौटते। अतः सोच समझकर सीमित बोलने अथवा यथासंभव मौन धारण करने में ही भलाई है।

इस प्रकार हमारे ऋषि–मुनियों ने भी कहाहै कि मौन धारण करना एक बड़ी साधना है। यह हमारे सोच की शक्ति को बढ़ाता है। इसलिए साधना के सभी पंथ में मौन की अहमियत स्वीकार की गयी है। मनोविज्ञानी और कैरियर विशेषज्ञ भी स्मरण शक्ति बढ़ाने, एकाग्रता, शान्ति और सकारात्मक सोच के लिए जीवन में मौन धारण करने की सलाह देते हैं। जब हम कुछ समय मौन रहते हैं, तो स्वयं से बात करते हैं, आत्म मूल्यांकन करते हैं इससे नयी मानसिक ऊर्जा प्राप्त होती है, इस छोटे से उपाय से आप अपने जीवन में बड़ा सकारात्मक बदलाव ला सकते हैं।

– प्रेषक

डॉ. रंजना शर्मा, नोएडा

''गजल''

तेरे दरबार में दुखियों की गुजर है या नहीं
मेरी बिनती पे तेरी एक नजर है या नहीं
हम तो सर को झुकाए बैठे हैं
तेरे चरणों में मेरी कोई बसर है या नहीं
तेरे दरबार.................
तेरे चरणों की शरण पायें दुआ करते हैं
कौन जाने कि दुआओं में असर है या नहीं
तेरे दरबार.................
हमने माँ बाप समझ कर के तुम्हें पूजा है
देखना है कि तुम्हें मेरी खरब है या नहीं
तेरे दरबार.................
तेरी रहमत की अगर बूंद भी मिल जाये तो
प्यासे दिल को कभी वर्षा की जरूरत ही नहीं
तेरे दरबार.................

कुमकुम बिसारिया

आदर्श नगर, झांसी

''अविद्या की ग्रन्थि''

अविद्या की ग्रन्थि माने जो हम अपनी आत्मा को ब्रह्म से जुदा मान करके, स्वयं तो बन गये क्षणिक जो ब्रह्म से जुदा होगा सो क्षणिक होगा। अनन्त से अलग होकर कोई अपने को क्या बना सकता है?

एक व्यापारी थे। उनका व्यापार बड़ा अच्छा चल रहा था। भारत वर्ष के बड़े प्रसिद्ध थे। महाराज उनके थे एक पार्टनर, उन्होंने लड़ाई कर ली। बोले हम तुमसे अलग व्यापार चलावेगें, हमको अलग कर दो। वह व्यापार तो बड़ा भारी था। अब उस में से वे अलग हुए तो जैसे चन्द्रमा में से एक किरण अलग हो गई हो बैंक वालों ने उनको पैसा देना बंद कर दिया। बोले भाई हम पूरे फर्म को देते हैं तुम को अलग थोड़े ही देंगे। नारायण! ठन ठन गोपाल मामला हो गया नहीं चला उनका व्यापार।

तो ब्रह्म से जीव अपने को अलग रखना चाहेगा तो क्या हो जाएगा। एक तो इसका घेरा छोटा हो जाएगा, देश परिच्छिन्न हो जाएगा, क्षणिक हो जाएगा। यह देहाभिमानी हो जाएगा। ब्रह्म से अलग होने के तीन नतीजे इस जीव को भोगना पड़ते हैं एक तो जन्म मरण क्षणिक हो गया दूसरे छोटे घेरे में बंध गया, कैदी हो गया और तीसरे देहाभिमानी हो गया। हड्डी, मांस, चाम जड़ हो गया विनाशी हो गया घेरे में बंध गया, जड़ हो गया और परब्रह्म परमात्मा ने हमसे अलग होकर क्या फायदा उठाया? बोले – बिल्कुल जड़ता उनके हाथ लगी। क्यों? कि जो दृष्टा से अलग होगा वह या तो दृश्य होकर रहेगा या कल्पित होकर रहेगा। हमारी आत्मा से जो अलग हो जाएगा वह या तो परोक्ष होगा, परोक्ष होगा, तो कल्पित होगा। कभी प्रत्यक्ष ही नहीं होगा उसका और या तो सामने होगा तो दृश्य होगा – जड़ होगा तो ईश्वर ने भी हम से अलग होकर कोई फायदा नहीं उठाया।

तो अलग अलग होने से कोई फायदा नहीं है। फायदा तो मेल मिलाप में है भाई। तो परमात्मा की अनन्तता तुम्हारी अनन्तता हो गई हमारा अभिमान भी टूट गया घेरा टूट गया जड़ता टूट गई और परब्रह्म परमात्मा में जो जड़ता आयी थी सो भी फायदा हो गया हमसे एक हो गया। तो अविद्या की ग्रन्थि निवारण करने मे ही मनुष्य का लाभ है।

❖ साभार – मुण्डक सुधा
स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

- ❖ **जिन्दगी में हमेशा समझौता करना सीखिये क्योंकि थोड़ा सा झुक जाना किसी रिश्ते को हमेशा के लिए तोड़ देने से बहुत बेहतर है।**
- ❖ **ताकत की जरूरत तब होती है जब कुछ बुरा करना हो, वरना दुनिया में सब कुछ पा लेने के लिए ''प्रेम'' ही काफी है।**

दसमुख और दशरथ

महाराज श्री दशरथ और महाप्रतापी लंकेश्वर दसमुख के नाम में कितना साम्य है। नाम का पूर्वाद्ध तो सर्वथा एक ही है। तथा साम्य की ओर इंगित करता है, किन्तु नाम के उत्तरार्ध में भिन्नता के कारण, वे भिन्न–भिन्न दिशाओं के अनुगमन करते है। दस की समानता तो सारी जाति में विद्यमान है, प्रत्येक व्यक्ति की शरीर की रचना दस इंद्रियों का समन्वय ही तो है। किन्तु शारीरिक दृष्टि से समानता होते हुए भी भावना और आचरण की दृष्टि से पग–पग पर भेद परिलक्षित होताहै। मुख के द्वारा व्यक्ति स्वाद लेता है। जबकि रथ के माध्यम से व्यक्ति शीघ्रता से अभीष्ट स्थान पर पहुंच जाता है। कहने का तात्पर्य है कि वह अपने लक्ष्य को शीघ्रता से प्राप्त कर लेता है। दसमुख जैसे लोगों की मान्यता है कि जीवन केवल भोग के लिये है। जबकि दशरथ जैसे लोगों के लिये आध्यात्मिक विचार धारा जीवन को एक विशेष लाभकारी उद्देश्य की उपलब्धि के लिये साधन मानती है। रावण भोगवादी मनोवृत्ति का परिचायक है, जबकि महाराज श्री दशरथ उद्देश्यवादी जीवन दर्शन के प्रतीक है। इन दोनों विचार धाराओं का संघर्ष भी शाश्वत है। महाराज श्री दशरथ का प्रादुभाव यदि सूर्य वंश में होता है, तो रावण निराचर वंश में जन्म लेता है। इस तरह अंधकार और प्रकाश का शाश्वत संघर्ष अनवरत चलता रहता है। दोनों ही चक्रवर्ती और मण्डलीक मणि के रूप में सारे विश्व के स्वामित्व के दावेदार के रूप में सामने आते हैं।

“ससुर चक्कबइ कोसल राऊ। भुवन चारि दस प्रगट प्रभाऊ।।
भुजबल विस्व वस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मण्डलीक मंनि रावन राज करइ निज मंत्र।।

सूर्य वंश के राजाओं के प्रति विश्व के लोगों में हार्दिक समादर की भावना थी। जबकि रावण अपने आंतक के द्वारा लोगों को नमन करने के लिये बाध्य करता है। जब इंद्रियों के द्वारा पवित्र कार्य सम्पन्न होते हैं, नियंत्रण और साधना की वृत्ति जीवन में जागरूक होती है, उस समय हमारे जवीन पर दशरथ का शासन होता है तब इंद्रियों शासन होता है। और जब इंद्रियाँ पाप प्रवृति में पकड़कर उच्छृश्रखल हो जाती है, तब जीवन रावण के नियंत्रण में चला जाता है। इस प्रकार दसमुख और दशरथ का यह द्वैत जीवन में चलता ही रहता है। महाराज श्री दशरथ का राज्य रावण के राज्य के विजय के रूप में समानता के अतिरिक्त समाज सुधारक की बाहुल्यता का भी प्रतीक है।

व्यक्ति और समाज के सर्वांगीण विकास के लिये, हृदय मस्तिष्क और शरीर तीनों को स्वस्थ होना चाहिये। हृदय के निर्माण के लिये भक्ति, मस्तिष्क के लिये ज्ञान और शरीर के लिए धर्म–कर्म की आवश्यकता होती है। इनमें से किसी का एक भी अभाव व्यक्ति और समाज को अंसतुलित बना देता है। रावण के चरित्र में यही असंतुलन विद्यमान है। दस सिर और बीस भुजाओं के माध्यम से उसकी बुद्धिमता और बलबता का तो संकेत प्राप्ता होता है, किन्तु हृदय की क्षुद्रता के कारण वह समाज के लिये अभिशाप बन जाता है।

रावण के बहुत विवाह के मुख्य दो ही उद्देश्य थे, विषय परायणता और अहंकार की तृप्ति है। जबकि महाराजा श्री दशरथ को पुत्र कामना की अभिलाष थी। दशरथ जी ने अपने पुत्र न होने की ग्लानि से पीड़ित होकर गुरू, वशिष्ठ जी के चरणों का आश्रय लिया और अपने मन की सारी व्यथा, गुरूदेव के समक्ष प्रकट कर दी।

''एक बार भूपति मन माहीं। भैं गलानि मोरे सुत नाही''।।
गुरू गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन नारि करि विनय विसाला।।
निज दुःख सुख सब गुरहि सुनायउ। कहि वशिष्ठ बहु बिधि समझायउ।।
धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन विदित भगत भयहारी।

इस द्वन्द्वात्मक जगत में दशरथ और दशानन की उपस्थिति शाश्वत हैं चाहे व्यक्तिगत जीवन हो अथवा सामाजिक जीवन। दोनों अपना प्रभाव दिखाते हैं। व्यक्तिगत जीवन में अन्तःकरण की वृत्तियों के रूप में विद्यमान रहते हैं, जब कि समाज में वे सज्जन और दुर्जन के रूप में। दोनों का संघर्ष भी शाश्वत है। कभी एक की प्रभुता अभिव्यक्त होती है, तो कभी दूसरे की। जब दशरथ की प्रधानता होती है, तो समाज में सज्जनता का प्राधान्य होता है, और जब दशानन प्रभावी होता है, तब समाज दुष्ट और विकृत हो जाता है। तो उसे ठीक करने के लिए ईश्वर को अवतार लेना पड़ता है, लेकिन यह अवसर दशरथ के यहाँ ही होताहै। अवतारी पुरूष दशाननी शक्तियों को नष्टकर समाज में धर्म की स्थापना करते हैं, जिससे सन्तजन अपनी दाशरथी गतिविधियों का संचालन निर्विघ्न कर सकें। समाज व जीवन से दुराचार, हिंसा, आतंक आदि का निष्कासन हो।

– ओ. के. स्वामी
आदर्श नगर, सीपरी

समता से ममता आए, बंधन बने अटूट।
ये दोनों जहं पे रहें, सके न शान्ति टूट।।
प्रकृति न सबकी एक सी, जग में दिखती नाहिं।
फिर भी यह सारा जग, बंधा नेह की माहिं।।
उर में समता रहेगी, तब ही ममता आए।
कह ''प्रमोद'' बिन नेह के, द्वेष कबहुं ना जाए।।

– प्रमोद कुमार गुप्ता

" गुरूदेव का आशीर्वाद "

परम श्रद्धेय आत्मनिष्ठ सन्तजन!

जब जिसका कल्याण हुआ है, मति, गति कीर्ति प्राप्त हुई है, सब सन्तों की कृपा से ही हुई है। दुनिया परमात्मा को ढूढ़ती है, जिसने सन्तों का सतसंग किया उसे सहजावस्था प्राप्त हुई। श्री मद्भागवत में भगवान की कृपा ने उद्धव जी से कहा है कि मैं सन्तों की चरण रज को सिर पर धारण करके वह शक्ति प्राप्त करता हूँ जिसके सहारे संसार के सभी कार्य सम्पन्न होते हैं। गीता का यह संकेत है जो समय गुजर चुका है, वह हमारे हाथ में नहीं वर्तमान तुम्हारे हाथ में है। इससे जितना समय ब्रह्म चिन्तन व स्वरूप के विचार में व्यतीत हो वही सार्थक है। आत्मा अमर है वहीं मैं हूँ। मैं, मेरा छोटा बड़ा मन से निकाल दो। सब तुम्हारे हैं और सबके तुम हो। जिस पसारे को मन से व नेत्रों से देख रहे हो वह सृष्टि के पहिले नहीं था और महाप्रलय के पश्चात नहीं रहेगा। जो सत आदि में था और अन्त में भी रहेगा। मध्य में नहीं है। यह अनेकता प्रतीति मात्र है, कुछ हुआ नहीं, मिथ्या है। व्यवहार में जो कुछ लिया यहीं लिया व जो कुछ दिया यहीं दिया। इसमें क्या हानि है। सबसे महान लाभ सत्संग ही हैं वह आप कर रहे है।

आप सच्चिदानन्द हो! सत् (जो था, है एवं रहेगा) चित (जिसमें अज्ञान न हो, सर्व का प्रकाश हो) आनन्द (सबका प्यारा, सदा प्यारा, सर्वत्र प्यारा, सबसे प्यारा) ऐसा सच्चिदानन्द आपका निज स्वरूप है, नित्य प्राप्त है, इसे प्राप्त करना नहीं है। जैसे शंकर जी की मूर्ति प्रथम है। उस पर विल्व पत्र पुष्प आदि चढ़े हैं जिसके कारण मूर्ति दिखती नहीं है। उसे (चढ़ी हुई वस्त को) हटाना है तभी मूर्ति के दर्शन होंगे। इसी प्रकार पहले अपना आपा है। जो माना है वह कचड़ा है उसी को हटाना हैं उसी को हटाने के लिए सन्तों का उपदेश है।

शिवोऽहम्

ऊँ शान्तिः ऊँ शान्तिः ऊँ शान्तिः

बाह्यर्थ सुख स्पृहःसन

यदि आप कोई बाहरी वस्तुओं से सुख लेने के चक्कर में पड़े हैं कि यहाँ रहने से, यह खाने पीने से ऐसे रहने से सुख मिलेगा तो आप जिन्दगी भर के लिए उस में फंस गये। अनतर्यामी परमेश्वर के सुख का परमेश्वरानन्द, आत्मानन्द, ब्रह्मानन्द का तो आने तिरस्कार कर दिया। यह तो आपसे रूठ कर भीतर बैठ गया और आप उसे ढूढ़ने बाहर निकले। इसलिए पहले स्पृहा छोड़कर भीतर जो सुख है उसे बाहर निकालने के लिए प्रयत्न कीजिए।

साभार – स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

'' शिवोऽहम् '' गूढ़ार्थ

''शिवोऽहम्'' वेदान्त का एक गूढ़ मन्त्र है जिसके वाच्यार्थ से हम सभी परिचित है अर्थात् शिव+अहम् यानि मैं ही शिव हूँ अर्थात् प्रत्येक आत्मा में परमात्मा ही परिलक्षित हो रहा है। किन्तु ये शिव और परमात्मा वास्तव में है क्या? क्या हम इसे देख सकते हैं? या फिर स्पर्श कर सकते हैं? या सुन सकते हैं? या अनुभव कर सकते है?

इन सभी प्रश्नो का उत्तर यदि हाँ में दिया जाए तो अतिशयोक्ति तो नहीं होगी लेकिन ये अवश्य जानना होगा कि हमे एक दिव्य अनुभूति की आवश्यकता हे जिसके द्वारा हम उस परम शन्ति का अनुभव कर सकते है।

मैं ही सत्चित आनन्द स्वरूप हूँ। जो शक्ति सारे जगत का संचालन कर रही है अर्थात् जो परमात्मा समस्त प्राणि जगत में आत्मा के रूप में स्थापित है वह आत्मा मैं ही हूँ जिसे न तो काट सकता है न ही अग्नि जला सकती है न ही जल गला सकता है तथा न ही वायु सुखा सकती है। ऐसी अजर अमर आत्मा मैं ही हूँ।

शिवोऽहम् शब्द की कुछ विशिष्टताए हैं कुछ मान्यताए है जिसके द्वारा इस के गुढ़ार्थ को कुछ सीमा तक स्पष्ट किया जा सकता हैं।

1. पहली मान्यता हो कि धरा की वह शक्ति जिस के द्वारा पृथ्वी नन्हें बीज को एक विज्ञान वृक्ष में परिवर्तित कर देती है तथा जिसके द्वारा फल फूल एवं अन्नोत्पादन होता है वास्तव में वह शक्ति स्वरूप आत्मा मैं हूँ।
2. जिस शक्ति द्वारा जीवनदायी दिन और रात होते हैं वह अज्ञान शक्ति मैं हूँ।
3. जो सूर्य को तपाती है वह आत्म शक्ति मैं हूँ।
4. वह शक्ति जो चन्दमा को शीतलता प्रदान कर रही है वह मैं हूँ।
5. वायु में प्राणतत्व फूंकने वाली तथा उसे चलाय मान बनाने वाली आत्म शक्ति मैं हूँ।
6. जो चराचर जगत में व्याप्त हो कर प्राणि जगत का संचालन कर रही है वह मैं हूँ।
7. यह शक्ति नाश नहीं होती है यह मकर्ता अभोक्ता तथा अजन्मा है।
8. यही सबसे पुरातन है तथा यही सबसे अधिक नवीन है।
9. यही आत्मा है यही सत्य है यही यथार्थ है तथा यही परमात्मा है और यही शिव शक्ति स्वरूप मैं हूँ।
10. यह शक्ति अनेक रूपों वाली होकर भी जल की भांति एक ही रसमयी धारा है। जैसे जल नीबू में खटास बन जाता है, पपीते में मिठास बन जाता है, करेले में कड़वापन हो जाता है।

    उसी प्रकार परमात्मा अनेकानेक प्राणियों में अनेकानेक रूपों में परिलक्षित होता है। हम हर जीव प्राणी को पृथक–पृथक नाम से जानते हैं जबकि चैतन्य तत्व एक ही है। शिव–शक्ति स्वरूप आत्मा एक ही है।

    यही शिवोऽहमृ का गूढ़ार्थ है यही इस मन्त्र की व्याख्या है और यही इसका स्वरूप है और वह स्वरूप में हूँ।

– कुमकुम बिसरिया

आदर्श नगर, झांसी

"विकृत चिन्तन"

ईर्ष्या, द्वेष, शोक सन्ताप, क्रोध, आवेश, रोष की मानसिक उत्तेजना में मानसिक शक्ति का बुरी तरह विनाश होता है। कहते हैं कि एक घण्ट का क्रोध एक दिन के बुखार से अधिक शक्ति नष्ट करता है। कायुकता जैसी भावनाएं मस्तिष्क को ऐसे चिन्तन में उलझाए रहती है जिसमें मिलता कुछ भी नहीं गँवाना ही गँवाना हाथ लगता है। चिन्ता, निराशा भय आशंका जैसे थकान उत्पन्न करने वाले अवसाद और क्रोध, प्रतिशोध, द्वेष जैसे आवेश दोनों ही ज्वार भाटों की तरह अवांछनीय उद्वेग उत्पन्न करते हैं। इस जंजाल में मनुष्य को अपनी उस क्षमता को व्यर्थ नष्ट करना पड़ता है जो सृजनात्मक दिशा में चमत्कार कर जाती। उद्विग्न रहने से प्रतिकूलताए घटती नहीं बढ़ती हैं उत्तेजित मस्तिष्क निवारण का मार्ग नहीं खोज सकता वरन् हड़बड़ी में ऐसे कदम उठा लेता है जो नई विपत्त खड़ी करते हैं अतः मन को शान्त रखना आवश्यक है।

मन की सूक्षम शरीर से साधना करके स्व–निर्मित असन्तुलनों से बचा जा सकता है जो जीवन को संकट ग्रस्त बनाने के बहुत बड़े कारण बने रहते हैं।

गुण कर्म स्वभाव का आधार शरीर में नहीं मन में जमा होता है। शरीर की हलचल सर्व साधारण की जानकारी में आती हैं एवं कर्म के आधार पर ही किसी का मूल्यांकन किया जाता है किन्तु वास्तव में बाह्य सफलताए और सम्पदाए आन्तरिक विभूतियों की प्रतिक्रिया भर है। जो इस सारगर्भित तथ्य को जानते हैं वे भाग्य और भविष्य का निर्माण अपने हाथों करने के लिए तत्पर रहते हैं। सूक्ष्म शरीर की साधना नकद धर्म है उसका प्रत्यक्ष परिणाम हथेली पर सरसों जमाने की तरह तत्काल सत्परिणाम प्रस्तुत करते हुए देखा जा सकता है।

साभार – श्रीराम शर्मा आचार्य

आक्सीजन ग्रहण करना

ऑक्सीजन जीवन के लिए शक्ति प्रदाता है। इसे शरीर में फेफड़ों के माध्यम से रक्त में समाविष्ट किया जाता हैं अधिक से अधिक प्राप्त करने के लिए प्रतिदिन कम से कम पांच बार किया करें।

गहरी वांस धीरे–धीरे (झटके से नहीं) लें। स्वांस को थोड़ी देर रोककर (अन्तः कुम्भक) रखें। जिससे श्वांस के द्वारा ली गई हवा के साथ प्रविष्ट ऑक्सीजन को शरीर में रक्त के माध्यम से पूरी तरह उपयोग कर लिया जाए। तदुपरांत उसे इस तरह से बाहर निकालें कि आप नाक झिनक रहे हों यानी फेंकते हुए, परन्तु झटके से नहीं चूंकि अन्दर भरी हवा एक बार में सम्पूर्ण नहीं निकल पाती इसलिए पांच–दस में सम्पूर्ण नहीं निकल पाती इसलिए पांच–दस सेकेण्ड का अन्तर रखरक पुनः दूसरी बार भी उपर्युक्त प्रकार से हवा को निकालें जिससे अब अन्दर भरी हवा लगभग पूरी पूरी बाहर निकल चुकी है। इस स्थिति में अब हम जब श्वांस लेंगे तो हवा के साथ ऑक्सीजन अन्दर अधिक पहुंचेगीं यह क्रिया बार–बार दोहरायें इससे दिन भर ताजगी एवं शरीर ऊर्जावान बना रहता हैं श्वांस सम्बन्धी रोगों मे यह क्रिया अत्यनत लाभकारक सिद्ध होती है।

अनमोल वचन

– अपनी कमियों को छुपाना ही इंसान की सबसे बड़ी कमजोरी है।

– किसी पर परोपकार करके उसे भूल जाऐं, जैसे कुछ किया ही न हो। परोपकार तो तब है, जब वह स्वयं आपके द्वारा किये गये परोपकार का अहसास दिलाए।

– धन होने पर दान करना कुछ नहीं, बात तो तब है जब अपने सुख को त्याग कर उसका दान किया जाए वही सही अर्थों में दान है।

– स्वयं को कष्ट देकर दूसरों का भला करने पर ही आत्मिक–शान्ति मिलती है।

– अहंकार इंसान का सबसे बड़ा शत्रु हैं, क्योंकि अहंकार ही अपने मित्र को शत्रु बना देता है।

– हर व्यक्ति को अपना, आत्मिक चिन्तन अवश्य करना चाहिए क्योंकि चिन्तन करने से ही व्यक्ति अपने सद्‌गुण एवं अवगुण का अहसास करके अपने व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन ला सकता है।

– आज व्यक्ति अपनी असफलता से दुःखी नहीं, अपितु दूसरे व्यक्ति की सफलता से दुःखी है।

– हमें कभी भी किसी को अपने से छोटा नहीं समझना चाहिए, क्योंकि यदि हम शिक्षा लेना चाहें तो एक छोटी–सी चींटी भी हमें शिक्षा दे सकती है।

– दूसरों के द्वारा आपके लिए कहे गये कटु वचनों पर अवश्य विचार कीजिए, क्योंकि उसमें सदैव कहीं न कहीं आपकी भलाई छिपी हो सकती है।

– अपनी सफलता पर दुःखी मत होइये, अपितु उस पर विचार कीजिए और पुनः दुगने उत्साह से उस कार्य को करने में लग जाइये, आपको उस कार्य में अवश्य सफलता मिलेगी।

– दूसरों के द्वारा आपके लिए की गई आलोचना से आप भागिये मत, अपितु उन पर विचारकर देखिए। आपकी कमियाँ स्वतः खत्म हो जायेगी।

– कोई भी कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व उस पर अवश्य विचार कीजिए, किन्तु कार्य हो जाने के बाद उसकी स्थिति पर तनिक भी विचार मत कीजिए।

– दूसरों की प्रशंसा करने में कंजूसी मत कीजिए क्योंकि प्रशंसा ही तो एक ऐसा शस्त्र है जो आपके दुश्मन को भी परास्त कर सकता है।

– सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जिसने दुःख नहीं देखा वह सुख के आनन्द का अनुभव नहीं कर सकता है।

– इंसान का सबसे बड़ा धन उसके सद्‌गुण है।

– कु0 शुभा नीखरा
झांसी

"आत्मस्वरूप का बोध"

जब जीव के ऊपर भगवान की अनन्य कृपा होती है, तब जन्म जन्मान्तर के पुण्य जागते हैं, तभी सद्‌गुरू की प्राप्ति होती हैं। गुरू शब्द के भाव को अभिव्यक्त करते हुए भगवान शंकर माँ पार्वती जी को गुरू गीता में गुरू तत्व को समझाते हुए कहते हैं कि –

गुशब्दस्तवन्धकाऽस्ति रूशब्दस्तनिन्रोधकः

अन्धकार निरोधित्वाद गुरूरित्यमिधीयते

गू शब्द अन्धकार रूप है, रू शब्द अंधकार को दूर करने वाला है। अन्धकार का विरोधी होने से ज्ञान दाता कहलाता है।

अब प्रश्न यह होता है कि मनुष्य को क्या अज्ञानरूपी अन्धकार है। जिसे कि गुरू ज्ञान रूपी प्रकाश देकर दूर कर देता है। इसका उत्तर यह है कि मनुष्य ने अज्ञान के कारण अपने शरीर को ही अपना स्वरूपमान लिया है जबकि शरीर तो पंचभूतों का मिश्रण है, तभी तो राम चरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है कि –

छितिजलपावक गगन समीरा। पंचरचित अति अधम शरीरा।।

शरीर के अन्दर रहने वाली चाहें ज्ञान इन्द्रियाँ हो चाहे कर्म इन्द्रियाँ हो चाहे अन्तःकरण हो किन्तु आत्मा का स्वरूप तो इनसे बिल्कुल अलग नहीं है, तभी तो आदि गुरू शंकराचार्य जी ने अपने ग्रंथ विवेक चूडामणि में कहा है कि –

शब्दादिभिःपञ्चभिरेव पच्व

पच्वत्वमापुःस्वगुणेन बद्धाः

कुरङ्ग मातग्ङ्मीन

भृङ्गनरः पञ्चभिरञ्चतः

अपने अपने स्वभाव के अनुसार शब्दादि पाँच विषयों में से केवल एक–एक से बंधे हुए हिरण, हाथी, पतग्ड, मछली और भौर मृत्यु को प्राप्त होते है, फिर इन पांचों से अकड़ा हुआ मनुष्य कैसे बच सकता है।

कहने का भाव यह है कि यह जीवन अज्ञान के कारण ही जन्म मृतयु के चक्र में फँस कर अनके योनियो में जन्म लेकर नाना प्रकार के कष्टों को भोग रहा है। इसका मूलकारण अपने स्वरूप को भूल जाना ही है। कहा है कि –

जाती बालों युवा वृद्धोमृतोजतः पुजस्तथा। बंमी भीयेष संसारे धरोयन्त्रसनोऽवशः।।

संसार चक्र में पकड़कर यह अज्ञानी जीव रहट (घटी यन्त्र) की भॉति ऊपर नीचे आता जाता रहता है, जिस तरह कुम्हार का चक्र एवं तेली का बैल निरन्तर घूमते रहते हैं उसी तरह जीव पराधीन बनकर जन्म लेता है, बालक बनता है, युवा बनता है तथा बृद्धावस्था को प्राप्त होकर मर जाता है। अपने अज्ञान के कारण ही वह जीव घटी–यन्त्र की भाँति आवागमन में पड़कर अपने स्वरूप को भूल जाने के कारण महान कष्ट प्राप्त करता रहता है।

जब सद्‌गुरू की कृपा होती है। तब उसे गुरू ज्ञान के द्वारा जन्म जन्मान्तर के पाप–पुण्य के कर्मफल जलकर के भस्म हो जाते है। तभी तो गीता में कहा है कि – यशोधांसि समिद्धोऽग्निमरस्मि

– सात्कुत्रूतेऽर्जुन।

ज्ञानाऽग्निः सर्वेकर्माणि भस्मासात्कुरूते तथा।।

हे अर्जुन! जिस तहर प्रज्जवलित अग्निकाष्ठ को जलाकर भस्म कर देती है, उसी तहर निरन्तर अभ्यास के द्वारा प्रबल हुई ज्ञानाग्नि पाप तथा पुण्य और इन दोनों से युक्त सभी कर्मों को जलाकर भस्म कर देती है।

कहने का भाव यह है कि आत्मज्ञान के प्राप्त होते ही जीव का सुख दुःख हानि–लाभ से उत्पन्न दुख समाप्त हो जाता है। जैसे कि किसी महिला ने सोचा कि उसके गले का हार खो गया है और वह दुःखी होकर रोने लगती है। पर जब उसकी सखी ने उसको बतलाया कि गले में जो तुम अपने गले में हार पहिने तो यह वही हार तो नहीं हैं जिसे तुम ढूढ रही हो और जिसके खो जाने का दुःख है। जैसे ही उसे अपने हार का ज्ञान होता है उसका दुःख दूर हो जाता है और प्रसन्न हो जाती है। तभी तो शंकराचार्या जी ने दुःखों का मूलकारण अज्ञान ही माना है। वे विवेक चूड़ामणि में कहते हं कि –

तमस्तमः कार्यमनर्थजालं, नदृश्यतेसत्युदिते दिनेशे।
तथा दयानन्दरसानुभूतौ, नैवास्ति बन्धानेच दुःखगन्धः।।

सूर्य के उदय होने पर जैसे अन्धकार दिखलाई नहीं देता बैसे ही उस अद्वितीय आत्मानन्द के रस का अनुभव होने पर न तो संसार बन्धन रहता है और न दुःख का ही गन्ध रहता है।

जिस प्रकार से चतुर ग्रहणी धान को कूटकर उससे भूसी अलग करके चावल को ग्रहण करके अपनी भूख को शान्त कर लेती है, उसी प्रकार से साधू पुरूष भी आत्मज्ञान के द्वारा आत्मबोध प्राप्त करके नाशवान संसार की आपत्ति का त्याग कर देते हैं तभी तो कबीर ने कहा है कि –

साधु ऐसा चाहिए जैसा सूप सुमाय। सार–सार कोगाहिरहे, थोथा देय उड़ाय।।

इसी भाव को प्रकट करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में कहा है कि–

जड़ चेतन–गुण, दोष में विश्व कीन्ह करतार।
सन्त–हंस–गुन गहिलें, परहरि वारिं विकार।।

कहने का भाव यह है कि आत्मस्वरूप का बोध ही मुख्य ज्ञान है, और यदि उसे आत्म–ज्ञान (बोध) नहीं हुआ तो सभी धर्म क्रियायें व्यर्थ हैं क्योंकि आत्माान के बिना न तो उसकी मुक्ति हो सकती है। और ना ही आत्म शान्ति मिल सकती है, न मनुष्य जीवन की सफलता प्राप्त हो सकती है। इसी भाव को प्रकट करते हुए जगतगुरू शंकराचार्य ने अपने विवेक चूड़ामणि में ठीक ही कहा है कि –

वदन्तु शारत्राणियजन्तुदेवान, कुर्वनत कर्माणि भजन्तु देवताः।
आत्मैक्य बोधेन बिना विमुक्ति, न सिघ्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि।।

भले ही कोई शास्त्रों की व्याख्या करें, देवताओं का भजन करे, नानाशुभ कर्म करें अथवा देवताओं को भजे तथापि अब तक ब्रह्म और आत्मा की एकता का बोध नहीं होता है तब तक सौ ब्रह्माओं के बीत जाने पर भी (अर्थात सौकल्पभी) मुक्ति नहीं हो सकती। तभी तो कबीर दास जी ने कहा है कि –

आत्म–ज्ञान के बिना सब सूना, क्या मथुरा क्या काशी।

❖ **पं. वेद प्रकाश त्रिवेदी**
हिन्दी प्रवक्ता

गुरू से प्रार्थना

हे गुरूवर मुझे दो ऐसा वरदान।
गाऊँ मैं तुम्हारा ही गुणगान।
हें गुरूवर अज्ञान अन्धकार से मुक्त करदो मुझे।
ताकि तुम्हारी ज्योति को पहचा सकूँ।।
विनती करूँ प्रभु पल्लवित करो।
गुरूभक्ति से मेरे हृदय को।।
गुरू ऐसा दो वरदान
गाऊँ मैं तुम्हारे की गुणगान........
जग के बन्धन मुझे न सताएँ
मेरे सिर पर तुम हाथ रखो गुरूवर
मेरी वाणी दृष्टि स्पर्श में मधुरता हो
मेरा कर्म के साथ रहो तुम सदा
गुरू ऐसा दो वरदान
गाऊँ मैं तुम्हारे ही गुणगान.........
भव सागर के तेज तूफान में
मेरी नैया बीच भवर में डोल रही।।
गुरूवर सहारा बनकर पार लगादो मेरी नैया
ऐसी दो शक्ति मुझे इस जीवन का बोझ उठा सकूँ।।
गुरू ऐसा दो वरदान
गाऊँ मैं तुम्हारे ही गुणगान.........
जन्मों के पाप संस्कारों से जुडे
इस जीव का उद्धार करो
इस जीवन में मेरे अथाह पापों का अवसान करो
गुरू ऐसा दो वरदान
गाऊँ मैं तुम्हारे ही गुणगान.........
मेरी आत्मा के अन्तर में, तुम अवतरित हो
जगत कल्याण हेतु, स्वार्थ की भावना न हो
गुरू सेवा ही जीवन का लक्ष्य हो।।
गुरू ऐसा दो वरदान
गाऊँ मैं तुम्हारे ही गुणगान.........

श्रीमती कृष्णा श्रीवास्तव, बण्डा

मुण्डक और श्वेताम्बर में जो कहा है कि एक साथ रहकर परस्पर सखाभाव रखने वाले दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा) एक ही शरीर रूप वृक्ष का आश्रय लेकर रहते हैं, उन दोनों में से एक तो कर्म फलस्वरूप सुख–दुःखों को भोगता है और दूसरा न खाता हुआ केवल देखता रहता है। इस प्रकार यह जीव शरीर की आसक्ति में निमग्न होकर असमर्थता के कारण मोहित हो चिन्ता करता रहता है। यदि यह भक्तों द्वारा सेवित अपने पास रहने वाले सखा परमेश्वर और उसकी विचित्र महिमा को देख ले तो तत्काल ही शोक रहित हो जाये तथा कठोपानिषद में कहा है कि ''मनुष्य शरीर में परब्रह्म के उत्तम निवास स्थान हृदयगुहा में छिपे हुए और अपने सत्यस्वरूप का अनुभव करने वाले (जीव और ईश्वर) दोनों हैं जो कि छाया और धूप की भांति भिन्न स्वभाव वाले हैं। ऐसा ब्रह्म वेत्ता कहते हैं। (क.उ. 1–3–1) इन सभी स्थलों में द्विवचनान्त शब्दों का प्रयोग करके जीव और ईश्वर के परिच्छिन्न स्थल हृदय में स्थित बताया गयाहै। इससे सिद्ध होता है कि तीनों जगह कही हुई विद्या एक है। इसी प्रकार जहाँ–जहाँ उस पर ब्रह्म परमेश्वर को प्राणियों के हृदय में स्थित बताया गया है, उन सब स्थलों में वर्णित विद्या की भी एकता समझ लेनी चाहिए। **– साभार वेदान्त दर्शन**

"सच्चा गुरू नहीं मिला, सुनी अधूरी सीख"

जब तक जीव पर भगवान की असीम कृपा नहीं होती तब तक उसे 'सदगुरू' की प्राप्ति नहीं होती है। समाज में भोले–भोले मनुष्यों को धर्म के नाम पर भटकाने वाले ढोंग रचाकर आडम्बर को दर्शाने वाले, मानबढ़ाई और प्रतिष्ठा को पाने की इच्छा रखने वाले गुरू तो जगह–जगह मिल ही जाते हैं, किन्तु सद्‌गुरू सरलता से नहीं मिलते है। जब गुरू स्वयं ही ज्ञान–विवेक से शून्य होगा तो शिष्य को कैसे और क्या ज्ञान देगा। ज्ञान देना तो दूर रहा वह तो शिष्य को भवकूप से गिरने से भी नहीं बचा सकता तभी तो कबीर दास जी ने ठीक ही कहा है कि –

जाकागुरू आँधरा चेला निरा अन्ध।
अन्धे–अन्धे के ठेलिया दोनो कूप परन्त।।

तभी तो कहावत है कि कपटी गुरू और लालची चेला, दोऊ नरक में ठेलम–ठेला। एक गुरू जी बड़े लालची स्वभाव के थे और चेला की तलाश कर रहे थे। कि उसी समय एक कपटी गुरू के पास दीक्षा लेने के लिए पहुंच गया। उसने जाकर गुरू के चरणों में प्रणाम किया गुरू की पूजा अर्चना की, फूल–माला, फल, मिष्ठान और दुशाला उढ़ाकर गुरू का पूजन किया जिसे देखकर लालची गुरू बड़े प्रसन्न हो रहे थे। थोड़ी देर बाद चेला ने गुरू से कहा, मुझे आप अपनी सेवा का भी कुछ अवसर दीजिए जिससे कि मैं कुछ पुण्य का लाभ प्राप्त कर सकूँ। ऐसा कहकर उसने गुरू के पास रखे हुए दो पीतल के बड़े कलशे लेकर जल भरने के लिए थोड़ी दूर नदी तरफ चल दिया, फिर क्या था वह तो लौटकर आया ही नहीं, गुरू जी प्रतीक्षा करते–करते थक गए और अन्त में कीमती कलश चोरी चले जाने से बहुत दुःखी होकर रोने लगे तभी उसी समय वहाँ से एक सन्त जा रहे थे। उन्होंने कपटी गुरू को रोते हुए देखकर दया के वशीभूत होकर पूँछा आप इतने दुःखी होकर क्यों रो रहे हो? तब उसने सारी घटना को बता दिया जिसे सुनकर सन्त ने समझाया कि अरे मूर्ख जिस पूजा और प्रतिष्ठा को पाकर शिष्य के लोभ में फंस कर तुमने मूल्यवान कलशों को खो दिया है, उसी प्रकार से जीवात्मा भी मोह माया में फँस करके अपने ज्ञान और विवेक रूपी कलश को खोकर अपने मूल्यवान मानव जीवन को गवां देता है। और अन्त में पछताते हुए दुःखी हो जाता है। तभी तो राम ने कहा है कि –

सो परत दुःख पावही, सिर धुन–धुन पछताय।
कालाहिं–कर्महि–ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाए।।

कहने का भाव यह है कि जब तक मनुष्य को पूजा सम्मान और धर्म को पाने की भूख बनी रहेगी तब तक वह सुख और शान्ति को नहीं प्राप्त कर सकता है।

सद्‌गुरू अपने ज्ञान के द्वारा शिष्य का उद्धार कर देता है, जिस प्रकार से कि काठ की नौका स्वयं तो जल में तैरती ही है, जो व्यक्ति उसका सहारा (आसरा) ले लेता हे, उसको भी डूबने नहीं देती, बल्कि उसको अपना सहयोगी बना लेती हैं तभी तो गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है कि–

तुलसी लोहा काठ–संग, जल में तैरत जाय।
सन्त न डूबन देत है, जो जन पकड़े बाय।।

कहने का भाव यह है कि किसी मनुष्य को सद्‌गुरू की प्राप्ति हो गई है और गुरू की कृपा से उसे आत्म ज्ञान प्राप्त हो गया और मोह–माया और आशक्ति दूर हो गई। और भगवान के चरणों में प्रेम उत्पन्न हा गया तब तो उसके जन्म जन्मान्तर की वासना की काई धुल ही जाती है। तभी तो विभीषण राम की शरण मे आकर कहता है कि –

उर कछु प्रथम वासना रही प्रभुपद प्रीति सरित सो वही।।

अब भगवान ने पूछा कि तुम्हारे ह्रदय की यह वासना कैसे दूर हो गई और किसने तुम्हारे ह्रदय में प्रभु का प्रेम उत्पन्न कर दिया।

तो वह कहने लगता है कि प्रभु आपने ही तो हनुमान जी को जो महान सन्त सद्‌गुरू को मेरे पास भेज कर मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है। तभी तो विभीषण जी हनुमान जी से कहते हैं कि–

अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता। बिनु हरिकृपा मिलह नहीं संता।।

तभी तो गोस्वामी तुलसीदास जी ने हनुमान जी की प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि –

जय जय जय हनुमान गोसाई, कृपा करो गुरूदेव की नाई।

दूसरी ओर कुंभकरण है कि जिसने नारद मुनि से ज्ञान को प्राप्त किया था पर उसका लाभ नहीं ले पाया वह रावण से कहता है कि –

नारद मुनि मोह ग्यान जो कहा। कह तेउ तोहि समय निरवहा।।

कहने का भाव यह है कि अधूरे ज्ञान के कारण कुंभकरण ने अपनी आयु को खाने पीने और सोने में ही खो दिया। इसी प्रकार से अज्ञानी मनुष्य भी अपनी आयु को मोह की निद्रा के सोने के कारण विषय भोगों को भोगने के कारण खो रहा है। तभी तो ठीक ही कहा है कि –

''सच्चा गुरू नहीं मिला, सुनी अधूरी सीख।

– ठा0 लाखन सिंह तोमर
913, प्रेमगंज, सीपरी बाजार, झांसी

जीवन्मुक्त पुरूष वह है जिसे कोई तृष्णा नहीं हैं । जो मुमुक्ष पुरूष हैं, उसके लिए यह संसार रूप रोग की औषधि है। औषधि क्या होती है?

''औसति दोषान्, धत्ते गुणान''

जो हमारे दोषो को मिटा के और हमारे जीवन में सद्‌गुण का आधान करे, इसका नाम औषधीय है।

अनन्त श्री विभूषित श्री श्री 1008 श्री स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज परमहंस

अनन्त श्री विभूषित श्री श्री 1008 श्री स्वामी विश्वम्भरानन्द जी महाराज परमहंस

मुद्रक - वीर बुन्देलखण्ड प्रेस, झांसी फोन नं. 0510-2332931